

श्रीश्रीगुरुराङ्गी जयतः •

सर्वे पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासुः यः

मोक्षार्थयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्

अहेतुक्यप्रतिहता यथात्मासुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्मं है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक । सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।  
भक्ति अधोक्षज की अहेतुकी विघ्नशून्य भक्ति मंगलदायक ॥ किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यर्थ सभी, केवल बंधनकर ॥

वर्ष ६ } गौराब्द ४७७, मास—केशव १५, वार—संकर्षण } संख्या ६-७  
सोमवार, २६ अग्रहायण, सम्वत् २०२०, १६ दिसम्बर १९६३ }

## श्रीश्रीगौराङ्गस्मरणमङ्गल-स्तोत्रम्

[ श्रीश्रीलठाकुर भक्तिविनोद कृत ]

यत्पादान्जं विधिशिवनुत्तं वीक्षितुं ते महान्तो वर्षे-वर्षे रथपरिगती गीर्ददेशात् समेत्य ।  
प्रीतिं लब्ध्वा मनसि महतीमोददेशात् समीयुर्गौडीयानां परमसुहृदं तं यतीन्द्रं स्मरामि ॥६१॥

निविष्णानां विपुलपतनं स्त्रीषु संभाषणं यत् तत्तद्दोषात् स्वमतचरकारक्षणार्थं य ईशः ।  
दोषात् क्षुद्रादपि सधुर्हरिं व्रज्यित्वा मुमोद तं गौराङ्गं विमलचरितं साधुमूर्तिं स्मरामि ॥६२॥

देवाङ्गीनान्वयजनिवतां तस्त्वबुद्धिप्रभावादाचार्यत्वं भवति यद्विदं तत्त्वमेकं सुगुहम् ।  
प्रश्नुन्नाय प्रचुरकृपया ज्ञापयामास यस्तत् तं गौराङ्गं गुणमधुकरं जाड्यशून्यं स्मरामि ॥६३॥

दासत्वेन स्वभजनवशात् दासगोस्वामिनं यस्तत्त्वज्ञानं भजनविषये शिक्षायामास साक्षात् ।  
सिन्धोस्तीरे चरमसमये स्थापयामास दासं तं गौराङ्गं स्वचरणजुषां बन्धुमूर्तिं स्मरामि ॥६४॥

पु १ रामाख्यं यो मुहजनकथा निन्दनपरं सदोपेक्ष्य भ्रान्तं कलिकलुषकूपेगतमिह ।  
अमोघं स्वीचक्रे हरिजनकृपालेशतः शचीसूनुः शश्वत् स्मरणपदवीं गच्छतु स मे ॥६५॥

सनातनं कण्डुरसप्रपीडितं स्वर्णेन शुद्धं कृपया चकार यः ।  
 स्वनाशबुद्धिं परिशोधयन्नहो स्मरामि गौरं नवक्षण्डनागरम् ॥६६॥  
 गोपीनाथं नरपतिबलादुयो ररक्षात्मतन्त्रो रामानन्दानुजनिजजनं शिक्षयन् धर्मतत्त्वम् ।  
 पापैर्लब्धं धनमिह सदा त्याज्यमेव स्वधर्मात् तं गौरांगं स्वजनशिवदं भद्रमूर्ति स्मरामि ॥६७॥  
 उपायनं राघवतः समाहृतं पुनः पुनः प्राप्तमपि स्वदेशतः ।  
 स्वभक्ततोयेन परात्परात्मना तमेव गौरं सततं स्मराम्यहम् ॥६८॥  
 तं लं नांगीकृतं येन संन्यासधर्मरक्षिणा जगदानन्ददत्तञ्च स्मरामि तं महाप्रभुम् ॥६९॥  
 जगन्नाथानगारे गरुडसदने स्तंभनिकटे ददर्श श्रीमूर्ति प्रणयविवशा कापि जरती ।  
 समारूढा स्कन्धं यदमलहरेस्तुष्टमनसः शचीसूनुः शश्वत् स्मरणपदवीं गच्छतु स मे ॥७०॥

### पद्यानुवाद—

(क्रमशः)

विधि शिव वन्दित प्रभु चरन देखन हित प्रति वर्ष ।  
 रथ यात्रा पर आवहि गौड़ भक्त अति हर्ष ॥६१॥  
 नारी भाषण होत है वैरागिन अति दोष ।  
 यातें लघु हरिदास कौं कीनीं त्याग सरोष ॥६१॥  
 गूढ़तत्त्व प्रसृम्नते कष्टौ कृपा कर एक ।  
 “जाति वर्ण कुल होत है दैव आग ले टेक ॥  
 तेउ आचारजता लहत भक्ति ज्ञान बलपाय ।  
 गुरुता कारन ज्ञान है जाति वरन कुल नाँय” ॥६२॥  
 दास गुसाँई कौं भजन तत्त्व सिखायौ नाथ ।  
 भेजे पुनि वृन्दा विपिन धरसलता के साथ ॥  
 अन्त समय हरिदास कें, भक्त बन्धुता साध ।  
 संकीर्तन कर दई प्रभु जलनिधि निकट समाध ॥६४॥  
 गुरु जन ‘निन्दनपर’ पुरी-रामचन्द्र को देख ।  
 भूढ़ पतित भव कूपमें दीनीं गौर अपेख ॥  
 भट्टाचार्य अमोघ को क्षियौ गौर अपनाय ।  
 हरि जन करुणा दीनजन बान्धवता दरसाय ॥६५॥

उदित सनातन ‘कण्डुरस पीड़ा’ निज तन त्याग ।  
 प्रभु आलिङ्गन कर कियौ दिव्य अङ्ग बड़ भाग ॥६६॥  
 राजकोशके अपव्यय हेतु उड़ीसा धीश ।  
 गौपीनाथै दरुध्य किय, निश्चय विश्वाबीस ॥  
 भवानन्द आदिक जनन प्रभुसे किय अनुरोध ।  
 क्षमाकर न हित नृपतिसौ कहिवे की संबोध ॥  
 प्रभु कही “अन्याय धन संग्रह उचित न होय ।  
 तुच्छ भोग हित वैष्णव ‘अधरम’ कर तन कोय” ॥६७॥  
 देत उपायन वर्षप्रति राघव परिहृत लाय ।  
 सोई भक्त उपहार प्रभु भुञ्जत मन हरखाय ॥६८॥  
 लाये जगदानन्द जू-चन्दन आदिक तेल ।  
 कियौ न अङ्गीकार प्रभु न्यास धरम मनमेल ॥६९॥  
 जगन्नाथ दरशन करत गरुड खंभकी टेक ।  
 उचकि पाय प्रभु अँसधर चढ़ी डोकरी एक ॥  
 गोविन्द लगे निवारवे निरख तासु अनुराग ।  
 प्रभु कही “ना यह दशा होत बडे ही भाग” ॥७०॥

## श्रीमतीराधाजीका दास्य ही हमारे लिये परम लोभनीय है

श्रील रूप गोस्वामी चरणने उपदेशामृतमें श्रीमती राधाजीका श्रेष्ठः च वर्णन करते हुए कहा है—

“कर्मिभ्यः परितो हरेः प्रियतया श्वक्ति ययुर्ज्ञानिन-  
स्तेभ्यो ज्ञानविमुक्तनक्तिपरमाः प्रेमैकनिष्ठास्ततः ।  
तेभ्यस्ताः पशुपालपञ्चजहृशस्ताभ्योऽपि सा राधिका  
प्रेष्टा तद्वदियं तदीयसरसी तां नाभयेत् कः कृती ॥”

दूसरोंका अपकार, चोरी, भूठ, व्यभिचार, लाम्पट्य आदि असत् कर्मोंमें निरत व्यक्तियोंसे देश का उपकार करनेवाले, दान, ध्यान, तीर्थ-भ्रमण आदि करनेवाले वे सत्कर्मी श्रेष्ठ हैं—जो बंबल अपनी ही इन्द्रियोंको तृप्त करनेकी इच्छा रखनेवाले स्वार्थी नहीं हैं; क्योंकि असत्कर्मसे सत्कर्म श्रेष्ठ है और असत्कर्मके प्राबल्यसे संसारमें मनुष्य जातिका वास करना ही असम्भव हो पड़ेगा ! फिर भी ऐसे सत्कर्मी का आदर्श ही चरम आदर्श नहीं है कुकर्मीसे सत्कर्मी अवश्य श्रेष्ठ हैं । जीव असत्कर्मों द्वारा अधिकतर उच्छृङ्खल होता है । उसकी उस उच्छृङ्खलताको रोकने के लिये असत्कर्मोंका संकोच होना आवश्यक है । अतः असत्कर्मोंके संकोचीकरणके उद्देश्यसे ही सत्कर्मों की व्यवस्था की गयी है । परन्तु कर्मोंमें एक दोष होता है, जिसे वे स्वयं पकड़ नहीं पाते । वह दोष है—अपने भोगकी अभिलाषा । कर्मी जो भी सत्कर्म करते हैं, उससे वे इस वर्तमान जन्ममें अभ्युदय और परकालमें सुख प्राप्तिकी आशा करते हैं । तात्पर्य यह कि उनके समस्त कर्म इन्हीं दोनों फलोंकी प्राप्तिके लिये ही होते हैं । इनकी तो बात ही क्या,

जो लोग अपनेको निष्काम-कर्मी कहते हैं, वे भी प्रच्छन्न भोगी ही हैं । उनके अन्तःस्थलके गंभीरतम प्रदेशमें छिपी हुई निजेन्द्रिय-प्रीति ही विभिन्न रूपोंमें अर्थात् स्वदेश-प्रेम, दरिद्रको अन्नदान, बख्शदान, दातव्य चिकित्सालय-निर्माण, कुर्वाँ, तालाब आदि जलाशयोंका निर्माण, प्याऊ लगाना और अतिथि-सत्कार आदि सत्कर्मोंके रूपमें प्रकटित होती है ।

हम पहले ही कह आये हैं कि कर्मीजन अपनी कपटताको अपने-आप नहीं पकड़ पाते । ऐसे बुभुक्षु (विषय-भोगकी वासना वाले) कर्मियोंसे मुक्तिकी इच्छावाले मुमुक्षु ज्ञानी श्रेष्ठ हैं । ज्ञानी अपनेको तात्त्विक समझते हैं तथा ऐसा सोचते हैं कि कर्मी लोग मूर्ख होते हैं, ऐसे कर्मियोंको सत्कर्मसे निवृत्त कराने जाकर कहीं स्वयं न असत्कर्ममें आसक्त हो पड़ें, इसलिये वे गीताके—“न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम्” अर्थात् अज्ञतावशातः कर्मोंमें आसक्त मूर्ख व्यक्तियोंकी बुद्धिभेद न पैदा करो—इस वाक्य का स्मरण करके सत्कर्मके लिये प्रेरणा देनेके कार्यसे भी दूर रहते हैं । कर्मीगण मूर्ख हैं; अमूर्ख ज्ञानीगण ऐसा विचार करते हैं कि—“ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ॥” अर्थात् कर्मीगण सत्कर्मजनित पुण्यफलसे देवलोकके भोगों को प्राप्त होते हैं और उन प्रचुर भोगोंका भोग कर पुण्यक्षय होनेपर वे पुनः मृत्युलोकमें लौट आते हैं । अतः इन कर्मियोंके नश्यत स्वर्ग-सुख-भोगकी कामनाका परित्याग कर चिर-आनन्दकी अभिलाषासे मुमुक्षु हो पड़ते हैं । इन ज्ञानियोंके विचारसे अपना

अस्तित्व ही समस्त क्लेशोंका मूल कारण है; इसलिये अस्तित्वको मिटाकर चिद्राहित्य, अचिन्तनिर्वाण या चित्तसाहित्य ब्रह्ममें लीन हो जाना ही श्रेयस्कर समझते हैं। दूसरी श्रेणीके लोग ही निर्भेद-ब्रह्मानुसंधान तत्पर ज्ञानी अथवा मायावादी या प्रच्छन्न बौद्ध कहलाते हैं। अहो ! इन ज्ञानियोंकी आशा कितनी लुप्त है ! लोग मूर्ख कर्मियोंसे होड़ लगाने जाकर, उन्हें मूर्ख बतलाने जाकर स्वयं ही मूर्ख हो पड़ते हैं अर्थात् अपना आत्म-विनाश कर डालते हैं।

ज्ञानीगण जिस नित्यानन्दकी प्राप्तिके लिये त्यागी होने का स्वांग रचते हैं, भोगीसे घृणा करते हैं, वह नित्यानन्द उन्हें प्राप्त नहीं होता। वे लोग भले ही अपनेको जीवन-मुक्त समझें, परन्तु कृष्ण-भक्तिका उनमें अभाव रहनेके कारण उनकी बुद्धि तक भी शुद्ध नहीं हो पाती, फिर नित्यानन्द प्राप्त करनेकी बात तो दूर ही रहे।

इसलिये सब प्रकारके ज्ञानियोंकी अपेक्षा शुद्ध-भक्त श्रेष्ठ हैं। मूर्ख-भोगीगण ऐसा समझते हैं कि भक्तजन भी उन्हीं की तरह कर्म करते हैं, उन्हींकी भाँति घण्टा बजाते हैं, ईश्वर-पूजन करते हैं, जीवों पर दया करते हैं, तीर्थोंमें भ्रमण करते हैं तथा साधु-संतोंकी सेवा करते हैं। परन्तु वास्तवमें यह ठीक नहीं है। कर्मियोंका भला-बुरा विचार इन्द्रियों द्वारा माह्य होता है। परन्तु भक्तकी सेवा इन्द्रियातीत अधोक्ष्ज सम्बन्धिनी होती है। भक्तोंमें निजेन्द्रिय-प्रीतिकी कामना नहीं होती, केवल कृष्ण-इन्द्रिय-प्रीतिकी अभिलाषा होती है।

ज्ञानी यह समझते हैं कि भक्तजन भी उन्हींकी भाँति किसी नश्वर वस्तुका—जो नित्यकाल तक

विद्यमान नहीं रहती, जिसके दृश्य, द्रष्टा और दर्शन का अस्तित्व लुप्त हो जायगा, जिसकी त्रिपुटी विनष्ट हो जायगी—‘अन्धविश्वास पूर्वक भजन करते हैं। ज्ञानीगण अचिन्त्य-शक्तिसम्पन्न भगवान्के चिन्मय हाथ-पैर, मुख, आँख और नाक आदि को काट कर उन्हें अङ्ग रहित—निराकार निर्विशेष करनेका प्रयास करते हैं। ऐसा करनेसे भगवान्—जो अद्वितीय भोक्ता हैं, अब भोग नहीं कर सकेंगे?’ हाथ-पैर, आँख, नाक, मुँह आदि अङ्गोंकी आवश्यकता तो उन ज्ञानीजनोंको ही है, क्योंकि वे जड़ नश्वर भोगोंका भोग कर सकेंगे, वे हिमालयकी मुक्त और निर्मल वायुमें, अरण्यके निर्जन सौन्दर्यमें भागीरथीके रमणीय तटपर बैठ कर त्यागके नाम पर प्रच्छन्न भोग करेंगे। भक्तजन वैसे प्रच्छन्न भोगी नहीं हैं। ज्ञानी-गण जिस मुक्तिके लिये बड़े लालायित रहते हैं, उस मुक्तिको भक्तजन उलट कर भी नहीं देखते, उसे अत्यन्त घृणित और परित्याज्य वस्तु समझते हैं। श्रीविल्वमङ्गलगोस्वामीने अपने प्रसिद्ध “कृष्णकर्णा-सूत” ग्रन्थमें लिखा है—

भक्तिस्त्वयि स्थिरतरा भगवन् यदित्या-  
 वंवेन नः फलति दिव्यकिशोर मूर्तिः ।  
 मुक्तिः स्वयं मुकुलिताञ्जलि सेवतेऽस्मान्  
 धर्मार्थकामगतयः समयप्रतीक्षाः ॥

श्रीकृष्णके चरणोंमें जिनकी शुद्धा-भक्ति उदित हो गयी है, उनकी सेवा करनेके लिये स्वयं मुक्ति देवी हाथ जोड़ कर प्रतीक्षा करती हुई खड़ी रहती हैं। परन्तु शुद्ध भक्तजन उनकी तरफ उलट कर भी नहीं देखते। साथ ही धर्म, अर्थ और काम भी उन भक्तों की सेवाके सुयोगकी प्रतीक्षामें सर्वदा बैठे रहते हैं।

अतएव धर्म, अर्थ और काम—जिनकी प्रार्थना कर्मीजन करते हैं तथा मोक्ष—जिसकी अभिलाषा ज्ञानीजन करते हैं—यह सब कुछ भक्तोंके लिये नितान्त हेय वस्तु है । इसलिये इस विषयमें श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती कहते हैं—

कैवल्यं नरकापते त्रिदशपुराकाश पुष्पाधते  
दुर्दान्तेन्द्रियकालसर्पपटली प्रोत्खातदंष्ट्रायते ।  
विश्वं पूर्यंमुखायते विधिमहेन्द्रादिश्च कीटायते  
यत् कारुण्यकटाक्षर्वभववतां तं गोरमेव स्तुमः ॥

ज्ञानियोगियों द्वारा अन्वेषणीय कैवल्य सुखको शुद्ध भक्तजन नरकके समान देखते हैं । कर्मियोंके लिये लोभनीय स्वर्ग-सुखको तो वे आकाश-कुसुमकी भाँति अवास्तव मानते हैं । श्रीगौर सुन्दरके चरण-कमलोंमें जिनका प्रेम उदित हो चुका है, उनके विश्वामित्र आदि तापसोंकी तरह पतनकी आशंका नहीं है । श्रीगौर सुन्दरके कृपा-कटाक्षका ऐसा ही अमोघ प्रभाव है । इसीलिये सब प्रकारके ज्ञानियोंकी अपेक्षा शुद्धभक्त कृष्णके अधिक प्रिय हैं । सब गोपियोंमें श्रीमती राधिकाजी कृष्णकी सर्वाधिक प्रियतमा हैं । जिस प्रकार श्रीमतीराधिकाजी श्रीकृष्ण की सर्वाधिक प्रियतमा है, उसी प्रकार उनका कुण्ड भी श्रीकृष्णको अत्यन्त प्यारा है । इसलिये श्रीमती राधिकाका दास्य ही हमारे लिये परम लोभनीय है ।

अहो ! ऐसा दिन कब आवेगा, जब हम अन्या-भिलाष, स्मृतिमें वर्णित तुच्छ कर्म, निर्विशेष ज्ञान,

तप और योगादि—सबको काकविष्ठावत परित्याग करके श्रीराधाके दास्यमें नियुक्त होकर श्रीराधागोविन्द की नित्य परम चमत्कार माधुर्यमयी सेवामें अधिकार प्राप्त होंगे । अनर्थयुक्त अवस्थामें श्रीमती राधिकाका दास्य मिलनेका सौभाग्य नहीं होता । जो लोग अनर्थयुक्त अनाधिकारकी अवस्थामें ही परमश्रेष्ठ सेविका श्रीमती राधिकाकी अप्राकृत लीलाकी आलोचनामें तत्पर होते हैं, वे इन्द्रियारामी, प्रच्छन्न भोगी और प्राकृत सहजिया हैं । श्रीब्रह्मसंहितामें लोकपितामह ब्रह्माजीने श्रीगोविन्दजीका इस प्रकारसे स्तव किया है—

प्रेमाक्षनच्छुरित भक्तिविलोचनेन  
सन्तः सर्वेव हृदयेऽपि विलोकयन्ति ।  
यं श्यामसुन्दरमचिन्त्यगुणास्वरूपं  
गोविन्दमाविपुस्यं तमहं भजामि ॥

अचिन्त्य गुण स्वरूप श्रीश्यामसुन्दरकी अप्राकृत श्रीमूर्त्तिका दर्शन केवल प्रेम-विभावित समाधिनेत्रों द्वारा ही संभव है । अनर्थमुक्त प्रेमिक भक्तजन उन श्रीगोविन्दका दर्शन करते हैं । इसलिये परम सुकृति विशिष्ट अनर्थमुक्त जो सब महापुरुषगण श्रीमती राधिकाके दास्यमें रह कर श्रीकृष्णका भजन करते हैं, केवल वे ही श्रीराधाकुण्डमें अबगाहन कर सकते हैं—  
वे ही आठोयाम श्रीश्रीराधागोविन्दजीकी सेवाका सौभाग्य लाभ करते हैं । वे ही धन्य हैं—धन्याति-धन्य हैं ।”

ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्ति सिद्धाप्त सरस्वती नोत्सवामो

## माला और तिलक-धारणकी नित्यता

वैष्णव लोग तुलसीकी माला और तिलक धारण का विशेष रूपसे आदर करते हैं। वे यह जानते हैं कि इसमें घृणा करनेकी कोई बात नहीं है, अधिकन्तु यह भगवत्-दासत्वका चिह्नस्वरूप है। हम जिनका दासत्व स्वीकार करते हैं, उनका दिया हुआ चिह्न हमारे लिये धारण करना आवश्यक होता है। जैसे अदालतके चपरासियोंके लिए अपनी-अपनी अदालतोंका चपरास धारण करना आवश्यक होता है, वैसे ही वैष्णवजन माला और तिलक रूप वैष्णव चिह्नोंको धारण करते हैं। जिन भगवान का दासत्व हमने स्वीकार किया है, उनके द्वारा प्रदत्त चिह्नको धारण नहीं करनेसे उनकी अवहेला करनी हो जाती है। अतएव जिस धर्मको ग्रहण किया जाता है, उस धर्मके आनुसङ्गिक विषयोंको अवश्य ग्रहण करना चाहिए। किन्तु अधिकांश व्यक्ति यह नहीं समझते। वे लोग वैष्णवोंके माला-तिलकको देखकर नाक-भौं सिकोड़ते हैं। इस माला-तिलक धारणके लिए ही बहुतसे व्यक्ति वैष्णव-धर्मको असभ्य जनोचित धर्म कहनेमें संकोच नहीं करते। जो माला-तिलक जनसाधारणके लिए इतनी घृणाका विषय है, शास्त्रोंमें इसके सम्बन्धमें क्या कहा गया है, यह जानना आवश्यक है। पद्मपुराणमें कहते हैं—

यज्ञो वानं तपो होमः स्वाध्यायः पितृ-तर्पणम् ।

व्ययं भवति तत्सर्वमूर्द्धपुण्ड्रं विना कृतम् ॥

तात्पर्य यह है कि जो लोग उर्द्धपुण्ड्र ( नाकसे

लेकर ललाटदेश तक उर्द्धरूपसे जिस तिलकको लगाया जाता है, उसे उर्द्धपुण्ड्र कहते हैं ) नहीं करते परन्तु यज्ञ, दान तप, होम, पितृतर्पण अर्थात् धर्मके लिए दूसरे सभी अनुष्ठान करते हैं, उनका वह सब कुछ व्यर्थ हो जाता है। पद्मपुराणमें नारदजीने भी कहा है—

यश्चरीरं मनुष्याणामूर्द्धपुण्ड्रं विना कृतम् ।

द्रष्टव्यं नैव तत्तावत् श्मशान-सदृशं भवेत् ॥

अर्थात् उर्द्धपुण्ड्ररहित शरीरका दर्शन नहीं करना चाहिए, वह श्मशानकी तरह परिस्थान करने योग्य है। स्कन्दपुराणमें कार्तिक माहात्म्यके प्रसङ्गमें कहा गया है—

उर्द्धपुण्ड्र-मृदा शुभ्रो ललाटे यस्य दृश्यते ।

चाण्डालोऽपि विद्युद्वात्मा याति ब्रह्म-सनातनम् ॥

अर्थात् जिनके मस्तकमें मृगमय सफेद उर्द्धपुण्ड्र देखा जाता है, वे चण्डाल होने पर भी पवित्र हैं। वे सनातन परब्रह्म स्वरूप भगवानको पा लेते हैं।

अन्यत्र कहा गया है—

उर्द्धपुण्ड्रे स्थिता लक्ष्मीरूर्द्धपुण्ड्रे स्थिता यशः ।

उर्द्धपुण्ड्रे स्थिता मुक्तिरूर्द्धपुण्ड्रे स्थिता हरिः ॥

( स्कन्दपुराण, कार्तिक-प्रसङ्ग )

अर्थात् उर्द्धपुण्ड्रमें लक्ष्मीजी निवास करती हैं, उर्द्धपुण्ड्रमें ही कीर्तिकी स्थिति है, उर्द्धपुण्ड्रमें ही मुक्ति है, और यह हरिका निवास-स्थान है। अतएव

उद्ध'पुण्ड्र ( तिलक ) कभी भी निन्दनीय या घृणा योग्य नहीं है । यह सब प्रकारके मङ्गलोंका कारण है । अतएव धर्मार्थी और मङ्गलकामी व्यक्ति मात्रको ही उद्ध'पुण्ड्र धारण करना चाहिए । ब्रह्माण्ड-पुराणमें उद्ध'पुण्ड्रके और भी गुण बतलाये गये हैं—

उद्ध'पुण्ड्रधरो मर्त्यो त्रियते यत्र कुत्रचित् ।

स्वपाकोऽपि विमानस्थो मम लोके महीयते ॥

अर्थात् उद्ध'पुण्ड्रधारी व्यक्ति जिस स्थानमें जिस किसी प्रकारसे क्यों नहीं देहका त्याग न करें, वे चण्डाल होने पर भी विमानके द्वारा भगवानके धाममें पहुँचकर आनन्दसे वहाँ निवास करते हैं । भगवान कहते हैं—

उद्ध'पुण्ड्रधरो मर्त्यो गृहे यस्यान्नमश्नुते ।

तदा विशत् कुलं तस्य नरकादुद्धराम्यहम् ॥

अर्थात् उद्ध'पुण्ड्र धारण करनेवाला व्यक्ति जिनके घर पर भोजन करते हैं, मैं उनके बीस पीढ़ियोंके पुरुषों का नरकसे उद्धार करता हूँ । जिस उद्ध'पुण्ड्र धारण करने वाले व्यक्तिके घरमें भोजन करनेसे बीस पुरुष नरकसे मुक्त होते हैं, वह उद्ध'पुण्ड्रधारी व्यक्ति कितना पवित्र होगा और वह उद्ध'पुण्ड्र कितना महान गुण है, उसे कहा नहीं जा सकता । यदि हमें शास्त्रकी बातोंमें विश्वास है, तब तो उद्ध'पुण्ड्र कभी भी अपेक्षणीय नहीं, प्रत्युत परम आदरणीय, परणीय और मङ्गलपूर्ण है ।

अब माला-धारणके विषयमें शास्त्र क्या कहते हैं, यह भी जानना चाहिए । गरुडपुराणमें कहते हैं—

धारयन्ति न ये मालां हेतुकाः पापबुद्धयः ।

नरकान्न निवर्तन्ते दग्धो कोपाग्निना हरेः ॥

अर्थात् जो सब पापबुद्धियुक्त तार्किक व्यक्ति माला धारणा नहीं करते, वे हरिके कोपानलसे दग्ध होते हैं और वे नरकसे कभी लौटते नहीं ।

विष्णुधर्मोत्तरमें भगवान कहते हैं—

तुलसीकाष्ठ मालाञ्च कंठस्थं वहते तु यः ।

अप्यशीचऽप्यनाचारो मामेवैति न संशयः ॥

अर्थात् जो व्यक्ति तुलसीकाष्ठ निर्मित माला गलेमें धारण करते हैं, वे आचार भ्रष्ट अपवित्र होने पर भी मुझे प्राप्त होंगे इस विषयमें सन्देह नहीं है ।

इस तरह शास्त्र माला-तिलक धारणका अनुमोदन करते हैं और ऐसा न करने पर नरककी आशंका किये हैं । जब मनुष्यमात्र ही अपने-अपने धर्म शास्त्र के आदेशानुसार चलते हैं तब माला और तिलक कैसे अपेक्षणीय हो सकते हैं ?

इस लेखमें शास्त्रोंसे जो सब प्रमाण दिये गये हैं, उससे यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि माला-तिलक जीवना अशेष कल्याण करते हैं । सभी शास्त्र ग्रन्थोंमें इसी तरह के कई प्रमाण पाये जा सकते हैं । बाहुल्यके भयसे और अधिक प्रमाण यहाँ उद्धृत नहीं हुए हैं । आशा है कि सनातन धर्मके मानने वाले हिन्दू लोग हिन्दु शास्त्रके आदेशका उल्लंघन नहीं करेंगे अथवा माला-तिलकधारी व्यक्तिको देख कर घृणा और इस तरह अपने पापके बोभेको बढ़ने न देंगे ।

—जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्रील भक्ति विनोद ठाकुर

# उपनिषद्

## बृहदारण्यक (५)

एक बार प्रजापतिके तीन पुत्र देवता, मनुष्य और असुर—पिता प्रजापतिके यहाँ ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए वास करने लगे। ब्रह्मचर्यवास कर चुकने पर उन्होंने प्रजापतिसे उपदेशके लिये प्रार्थना की। इस पर प्रजापतिने उन सबको अलग-अलग “द” इसी अक्षरका उपदेश किया। इसे सुनकर देवताओंने यह समझा कि हम देवता लोग सर्वदा भोगोंमें प्रमत्त रहते हैं, इसलिये पिताजीने “द” अक्षर द्वारा हमें अपने ‘इन्द्रियोंका दमन’ करनेका उपदेश किया है। मनुष्योंने भी यह समझा कि हम मनुष्य सर्वदा सभी वस्तुओंका संग्रह करनेमें व्यस्त रहते हैं; इसलिये पिताजीने हमें “द” इस अक्षरसे ‘दान करनेका’ उपदेश किया है। इसी प्रकार प्राणी-हिंसक असुरोंने यह समझा कि हम असुरगण सर्वदा प्राणीहिंसामें लगे रहते हैं; इसलिये प्रजापतिने हमें इस ‘द’ अक्षरसे ‘प्राणियों पर दया करनेका’ उपदेश किया है। ऐसा समझ कर वे तीनों अपने-अपने स्थानको लौट गये।

एक समय वाक् आदि इन्द्रियोंमें यह विवाद उपस्थित हुआ कि उन सबमें कौन श्रेष्ठ है। वे ‘मैं श्रेष्ठ हूँ’, ‘मैं श्रेष्ठ हूँ’ इस प्रकार विवाद करते हुए ब्रह्माजीके निकट पहुँचे और उनसे बोले, हममें कौन श्रेष्ठ है? उनके इस विवादको सुनकर ब्रह्माजीने कहा—‘तुममेंसे जिसके शरीरसे पृथक् हो जाने पर शरीर अपनेको अधिक पापी समझता है, वही तुममें श्रेष्ठ है।’

पहले वाणीने उत्क्रमण किया। उसने एक वर्ष तक बाहर रहकर लौट कर दूसरी इन्द्रियोंसे पूछा—‘मेरे बिना तुमलोग कैसे जीवित रह सके थे?’ यह सुनकर उन्होंने कहा—‘जैसे गूँगे मनुष्य बोलनेमें असमर्थ होनेपर भी जीवित रह सकते हैं, वैसे ही हम भी जीवित रहे।’

तत्पश्चात् चक्षुने उत्क्रमण किया। एक वर्षके पश्चात् उसने भी लौट कर दूसरी इन्द्रियोंसे पूछा—‘मेरे बिना तुम लोग कैसे जीवित रह सके थे?’ उन्होंने उत्तर दिया—‘जैसे अन्धा मनुष्य आँखोंसे देख न पाने पर भी अन्यान्य इन्द्रियोंसे कार्य कर सकता है और जीवित रह सकता है, वैसे ही हम भी जीवित रहे।’

तदनन्तर श्रोत्रने उत्क्रमण किया। एक वर्षतक बाहर रह कर उसने भी लौट कर वही प्रश्न किया। दूसरी इन्द्रियोंने उत्तर दिया—‘जैसे बहरे मनुष्य कानोंसे न सुन सकने पर भी अन्यान्य इन्द्रियोंसे कार्य कर जीवित रहते हैं, वैसे ही हम लोग भी जीवित रहे।’

उसके पश्चात् मनने उत्क्रमण किया। उसके लौटने पर भी यही प्रश्न उठा कि मनके अभावमें जीवित रहा जा सकता है या नहीं? दूसरी इन्द्रियोंने उत्तर दिया—‘जैसे कोई मूर्ख व्यक्ति मनके द्वारा किसी विषयको न समझने पर भी उसके प्राणादिकी क्रियाओंका व्यतिक्रम नहीं होता, अर्थात् वह मर नहीं जाता, जीवित रहता है, वैसे ही वे भी जीवित

रहे। उसके बाद रेतः ( वीर्य ) ने उत्क्रमण किया। एक वर्षके बाद लौटने पर उसने पूछा कि उसके अभावमें दूसरी इन्द्रियाँ कैसे जीवित रही ? उसके द्वारा ऐसे पूछने पर दूसरी इन्द्रियोंने उत्तर दिया— जैसे नपुंसक व्यक्तिके इन्द्रिय-संचालन और जीवन-धारणमें कोई कष्ट नहीं होता, वैसे ही तुम्हारे अभावमें भी हम बचे रहे।

अन्तमें प्राणने उत्क्रमण करनेकी चेष्टा की। तब सभी इन्द्रियाँ भयभीत होकर कहने लगीं—हे प्राण ! आप बाहर न जाँय। आपके बिना हम जीवित नहीं रह सकती। इस तरह यह सिद्ध हुआ कि प्राण ही सर्वश्रेष्ठ है।

आरुणिपुत्र श्वेतकेतु पञ्चालदेशमें एक सभामें गये थे। वहाँ जीवलपुत्र राजा प्रवाहनने उनसे पूछा—हे श्वेतकेतु, तुम्हारे पिताने तुम्हें कुछ सिखाया है?

श्वेतकेतुने कहा—‘हाँ?’

तब प्रवाहनने प्रश्न किया—‘मृत्युके पश्चात् प्रजागण ( जीव ) जिस मार्गमें गमन करते हैं या पुनरागमन करते हैं, उसके बारेमें तुमने क्या सुना है?’

श्वेतकेतु उत्तर देनेमें असमर्थ होकर पिताके पहुँचे और उनसे इस विषयमें पूछा। पिता भी उत्तर देनेमें असमर्थ होकर राजा प्रवाहनके निकट पहुँचे। वहाँ वे ब्रह्मचर्यका पालन करने लगे। ब्रह्मचर्यका पालन करने पर उन्होंने राजाके निकट इस विषयमें प्रश्न किया।

राजा प्रवाहन कहने लगे—‘यह पृथ्वी लोक अग्नि है। आदित्य उसका समिध् है, किरण उसका धूम

है, दिन ज्वाला है, सभी दिशाएँ अङ्गारें हैं, एवं अवान्तर दिशाएँ अग्निकी स्फुलिंगे हैं। इस अग्नि में देवता लोग श्रद्धाकी आहुति देते हैं। इस आहुति से सोम राजाका जन्म होता है।

पर्जन्य ( बादल ) देवता अग्नि है। सम्बत्सर उसका समिध् है, मेघ धूम हैं, विद्युत् ( बिजली ) ज्वाला है, वज्र अङ्गार है, एवं मेघ गर्जन विस्फुलिङ्ग है। इस अग्निमें देवगण सोम राजाको हवन करते हैं। इससे वर्षा होती है।

यह लोक अग्नि है। पृथ्वी ही इसकी समिध् है, अग्नि धूम है, रात ज्वाला है, चन्द्र अङ्गार है और नक्षत्र विस्फुलिङ्ग हैं। देवता इस अग्निमें वर्षा को आहुति देते हैं। इससे अन्न उत्पन्न होता है।

पुरुष अग्नि है, उसका खुला हुआ मुख ही समिध् है, प्राण धूम है, वाक् ज्वाला है, नेत्र अङ्गार है एवं भ्रोत्र विस्फुलिङ्ग है। देवगण इस अग्निमें अन्नको होमते हैं। इससे वीर्यकी उत्पत्ति होती है।

स्त्री अग्नि है, उपस्थ समिध् है, लोम धूम है, योनि ज्वाला है, मैथुन क्रिया अङ्गार है, एवं आनन्द-लेश अङ्गार है। देवगण इस अग्निमें वीर्यकी आहुति देते हैं। इसके द्वारा पुरुषकी उत्पत्ति होती है। जब तक उसका कर्मक्षय नहीं होता, तब तक वह जीवित रहता है। जो गृहस्थ इस पञ्चाग्नि विद्याको जानते हैं एवं जो संन्यासी या वानप्रस्थ श्रद्धायुक्त होकर सत्यकी उपासना करते हैं, वे ज्योतिः अभिमानी देवताको प्राप्त होते हैं। वहाँ से दिवसाभिमानी देवता, शुक्लपक्षाभिमानी देवता, उत्तरायणाभिमानी देवता आदि के क्रमसे देवलोकमें पहुँचते हैं। वहाँसे

आदित्य और आदित्यसे विद्युत्सम्बन्धी देवताको प्राप्त होते हैं। यहाँ एक मानस पुरुष आकर इस पञ्चाग्नि विद्यावान् व्यक्तिको ब्रह्मलोकमें ले जाते हैं।

जो व्यक्ति सकाम होकर यज्ञ, दान, तपस्या आदिका अनुष्ठान करते हैं, वे देहान्त होने पर धूमाभिमानी देवताको प्राप्त होते हैं। धूमसे रात्रि, रात्रिसे कृष्णपक्षाभिमानी देवता, वहाँ से दक्षिणायनाभिमानी देवता, वहाँसे पितृलोक और पितृलोकसे चन्द्रलोकको प्राप्त होते हैं। चन्द्रलोकमें आकर वहाँसे फिर इस पृथ्वी पर जन्म ग्रहण करते हैं। इस देहका कर्मताश होने पर पुनः आकाशादिमें पहुँचकर वायु-

वर्षाके संयोगसे पृथ्वी पर जन्म ग्रहण करते हैं। इस प्रकारसे सकाम व्यक्तियोंके यातायातका अन्त नहीं है। इसे धूममार्ग या धूमयान कहते हैं।

निष्काम व्यक्ति अग्नि आदि देवयानमें गमन कर मुक्त होते हैं। किन्तु सकाम व्यक्तिकी मुक्ति नहीं है। उसे पुनः पुनः जन्म-मृत्युमें पड़ना होता है। पञ्चाग्नि विद्याके जानने वाले व्यक्ति मुक्त होते हैं और तत्त्वज्ञान-रहित जीव कीट-पतङ्गादि नीच योनियोंको प्राप्त करते हैं।

— त्रिवण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रीती महाराज ।

## श्रीमद्भागवतमें सख्य-भाव

[ वर्ष ६, संख्या ४, पृष्ठ ८४ से आगे ]

श्रीकृष्णके प्रति ग्वाल-बालोंका स्नेह, सौहार्द और विश्वास चरम सीमा पर था। इसीसे उनकी सख्य-भक्ति भक्ति-साहित्यकी अमर निधि है। वह ब्रजके कण-कणमें समाई हुई है, वह ब्रजजनका प्राण है। श्रीकृष्ण ग्वाल-बालोंके सखा ही नहीं, हृदय-रमण भी हैं। वे उनके जीवन-धन और जीवन-सङ्गी हैं, स्वामी हैं, आश्रयदाता हैं, गुरु हैं, सदुपदेशा हैं, मार्ग-द्रष्टा हैं; उन्होंने अपने मन, प्राण, इन्द्रिय समूह और शरीर सब कुछ श्रीकृष्णके चरणोंमें समर्पित कर दिया है। उनके मनोरञ्जनके एकमात्र आधार ब्रजेन्द्रनन्दन श्याम सुन्दर ही हैं। सभी प्रकारके

व्यवहार, गोष्ठी और यात्राएँ कृष्णके साथ ही उन्हें रुचिकर होती हैं। सर्वदा उनके पदचिह्नोंका अनुसरण करना ही उनका ध्येय है। ब्रजराजकी रूपमाधुरीका दर्शन करना ही उनकी कृतार्थताका मूल्य है।

एकदा देवयात्रायां गोपाला जातकौतुकाः ।

अनोभिरनदुद्युक्तः प्रपयुस्तेऽम्बिकावनम् ॥

( भा० १०।३।१ )

एक समय नन्दबाबा आदि सभी गोपालोंने अपने-अपने परिवारके साथ देवयात्राके अवसर पर बड़ी उत्सुकता, कौतूहल और आनन्द से भरकर बैलों-

से जुती हुई गाड़ियोंमें बैठकर अम्बिकावनकी यात्रा की। वहाँ पहुँच कर सबने सरस्वती नदीमें स्नान किया। देवदेव महादेव और भगवती अम्बिकाका पूजन करके ब्राह्मणोंको गौ, वस्त्र, सुवर्ण और अनेक प्रकारके अन्न प्रदान किये तथा वहीं पर विश्राम किया। रात्रिके समय जब वे विश्राम कर रहे थे कि शापसे अभिभूत सुदर्शन नामक विद्याधर—जो सर्पकी योनिमें पड़ा था—श्रीनन्दबाबाको पकड़ कर निगलने लगा। उस समय नन्दबाबा और ब्रजवासियोंकी करुण पुकार सुनकर श्रीकृष्णने नन्दबाबाकी रक्षा कर सुदर्शन विद्याधरको सर्प योनिसे मुक्त कर दिया। इसी प्रकार एक दूसरी रातको, जब कृष्ण और बलराम गोपियोंके साथ विहार कर रहे थे, तब शङ्खचूड़ नामक कुवेरका अनुचर यज्ञ गोपियोंको लेकर भाग चला। उस समय कृष्णने उस यज्ञको मारकर गोपियोंकी रक्षा की।

अनन्तर ब्रजमें श्रीकृष्णको अपने साथियोंके साथ हारु-परिहास लीलाएँ करते हुए बहुत-सा समय बीत गया। एक दिन कसका भेजा एक असुर बैलका रूप धारण कर ब्रजमें आया और उसने ब्रजभूमिमें बड़ा उत्पात मचाना आरम्भ किया। उसके उत्पातसे सभी ब्रजवासी संत्रस्त हो गये और हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! इससे हमारी रक्षा करो, इस प्रकार पुकारते हुए श्रीकृष्णके पास पहुँचे—

कृष्ण कृष्णेति ते सर्वे गोविन्दं शरणं ययुः ।

( भा० १०।३६।६ )

जब हे कृष्ण ! हे कृष्ण !! कहते हुए सब ग्वाल-बाल कृष्णकी शरणमें गये, तो भगवान्ने उन्हें

भयभीत जानकर सांत्वना दी और असुर से कहा— हे मन्द ! हे नीच ! गोपालों और पशुओंको डरानेसे क्या होगा ? दुष्टोंका बल व गर्वका नाश करनेवाला तो मैं तेरे समक्ष खड़ा हूँ।' ऐसा कहते हुए ताल ठोककर कृष्ण अपने एक सखाके गलेमें बाँह डालकर खड़े हो गये—

सख्युरसे भुजाभोगं प्रसार्यावस्थितो हरिः ।

सोऽप्येवं कोपितोऽरिष्टः क्षुरेणावनिमुल्लिखन् ॥

( भा० १०।३६।९ )

अपने सखाके कंधे पर धरी हुई भुजाओंको ही असुरके आगे फैला दी। यह देखकर असुरको बड़ा ही क्रोध उत्पन्न हुआ। वह क्रोधके मारे खुरोंसे पृथ्वीको खोदता हुआ कृष्णकी ओर पूर्ण वेगसे बढ़ा। उसने कृष्णको मारनेकी अनेक चेष्टाएँ कीं; किन्तु अघटन-घटनापटु नन्दराजकुमारके समक्ष उसकी एक भी चाल न चल सकी। वह शीघ्र ही अमरलोकका पथिक बना दिया गया।

इसीके पश्चात् एक दिन वंस-प्रेरित व्योमासुर भी गोपवेश धारण कर गोपालोंके साथ क्रीड़ा करते हुए श्रीकृष्णकी मण्डलीमें प्रवेश कर गया और एक-एक कर अधिकांश गोपालोंको खेलमें ही ले जाकर एक विशाल पर्वतकी कन्दरामें रख करके कन्दराका मुख शिलासे ढक अपने कर्तव्य पर गर्व करने लगा। श्रीकृष्णने जब देखा कि खेलमें केवल चार-पाँच गोप ही शेष रह गये हैं तो उन्हें उसकी करतूत समझमें आगई और उसकी दुष्टता प्रकट हो गई—

तस्य तत् कर्म विजाय कृष्णः शरणदः सताम् ।

गोपान् नयन्तं जग्राह बुकं हरिरिबोजसा ॥

( भा० १०।३७।३१ )

सत्पुरुषोंको शरण देनेवाले भगवान्ने उस दैत्य का कृत्य देखकर गोपोंको ले जाते हुए उसे इस प्रकार पकड़ा जैसे सिंह बिना पराक्रम एक भेड़ियेको पकड़ लेता है। अन्तमें उसे खेल ही खेलमें मार गिराया। फिर कन्दरासे शिलाओंको हटाकर बिकल अपने सखाओंको निकाला और वनसे अपने-अपने गेहको चल दिये।

इस प्रकारकी अनेक लीलाएँ गोपालोंके साथ श्रीकृष्णकी चलती रही और मैत्रीभावकी प्रगाढ़ता भी उत्तरोत्तर बढ़ती रही। इसी बीचमें कंसने मथुरा में धनुष यज्ञका आयोजन कर श्रीकृष्ण और बलराम के साथ नन्द एवं गोपोंको भी आमन्त्रित किया। निमन्त्रण देनेके लिये अपना हितैषी समझ यादव अक्रूर को भेजा। अक्रूर भगवान्-व्रजमणिके दर्शनकी अभिलाषासे युक्त हो नन्दव्रजमें आये तथा उन्हें कंसके द्वारा आयोजित धनुष यज्ञका वृत्तान्त एवं अन्यान्य समाचारोंको सुनाकर मथुरामें आयोजित आयोजनमें सम्मिलित होनेके लिये प्रोत्साहित किया। सभी अपने-अपने शकटोंको साज सभी प्रकारके उपयोगी सामानको रखकर मथुरा चलनेके लिये तत्पर हुए। एक सुन्दर रथमें राम-श्याम और अक्रूर आसीन हुए, शेष अपने-अपने शकटोंमें नन्दराय एवं गोपगण स्थित होकर चल पड़े।

नन्दराय और सभी गोपाल अपने शकटोंको शीघ्र चलाकर मथुरा पुरी पहले ही पहुँच गये। वहाँ नगरीके समीपके ही एक उपवनमें अपना डेरा डाला। कुछ समय परचात् यमुना स्नान कर श्रीकृष्ण बलराम से शोभित अपने रथको लेकर अक्रूर भी वहाँ आ पहुँचे। आपसमें मिलने-जुलने और वार्तालापके

अनन्तर श्रीकृष्णने अक्रूरको तो बिदा कर दिया और आप मथुरापुरीका निरीक्षण करनेके लिये ग्वालवालोंको लेकर अपने बड़े भैया बलरामके साथ चले। सभीने बड़े उत्साहसे घूम-घूमकर मथुरापुरीको देखा। श्रीकृष्ण, बलरामके आगमनको सुनकर पुरनारियाँ अपने-अपने घरोंके सारे कार्योंको छोड़ श्रीकृष्ण बलरामकी रूपमाधुरीका पान करनेको दौड़ पड़ीं। उसी समय राजा कंसके रजक अपने कंधों पर वस्त्रोंकी बड़ी बड़ी गांठें रखे हुए आते हुए दीख पड़े। उन्हें देख सभीको एक प्रकारका कौतूहल हुआ सबने श्रीकृष्णका संकेत पाकर उनसे उत्तम वस्त्रोंकी याचना की, परन्तु राजा कंसके घमण्डी धोबियोंने वस्त्र न देते हुए सभीका तिरस्कार किया। उनका यह व्यवहार श्रीकृष्णको अच्छा नहीं लगा। उन्होंने प्रधान रजकके एक ऐसा तमाचा मारा कि उसका मस्तक धड़से अलग होकर गिर पड़ा। बाकी बचे रजक भयभीत हो इधर-उधर भाग गये और वस्त्रोंकी गांठें भी वही छोड़ गये।

वसित्वाऽऽनप्रिये वस्त्रे कृष्णः संकषणस्तथा ।

शेषाण्यादत्त गोपेभ्यो विसृज्य भुवि कानिचित् ॥

(भा. १०।४१।३६)

श्रीकृष्ण और बलरामने मनचाहे सुन्दर-सुन्दर वस्त्र पहन कर बचे हुए वस्त्रोंमेंसे बहुतसे अपने साथी ग्वाल वालोंको भी दिये और जो बचे रहे उन्हें पृथ्वी पर ही छोड़ दिया। अनन्तर वायक ( दर्जी, मालाकार, कुञ्जा ) आदिसे मिलते हुए विविध प्रकारकी लीलाएँ कीं। अन्तमें सभीके साथ धनुष यज्ञके स्थानपर पहुँचे। वहाँ पहुँचकर धनुष भंग किया और जो रजक सामने आये उन्हें धनुषके टुकड़ोंसे ही

मार कर भगा दिया। इस प्रकार स्वच्छन्द विचरते करते हुए दिन बीत गया। तब सभी अपने-अपने डेरेकी ओर चले—

तयोविचरतोः स्वर्णादित्योऽस्तमुपेयिवान् ।

कृष्णरामौ वृत्तौ गोपैः पुराच्छकटमीयतुः ॥

( भा० १०।४२।२३ )

उनको स्वच्छन्द घूमते-फिरते सूर्य अस्त हो गया। तब रामकृष्ण भी गोपोंसे परिवेष्टित हो पुरीके पीछे अपने निवास स्थानको लौटे। वहाँ आकर सभीने स्वादिष्ट भोजन किया और रात्रिमें सुखपूर्वक विश्राम किया। दूसरे दिन प्रातःकाल अपने दैनिक कृत्योंसे निवृत्त होकर पुरीकी शोभा देखते हुए कंसके रङ्गद्वार पर पहुँचे। वहाँ कुवलयपीड नामका गज-राज मस्तीसे भ्रम रहा था। श्रीकृष्णने महावतको बसके हटानेके लिये कहा, परन्तु उसने द्वार परसे हाथी नहीं हटाया। इसीमें कहा सुनी हो गई और श्रीकृष्णने लीला में ही हाथीका वध कर दिया। अनन्तर गोपोंके साथ श्रीकृष्ण और बलराम हाथीका एक-एक दाँत हाथमें लिये क्रीड़ा करते रङ्गमंचकी ओर बढ़े।

वृत्तौ गोपैः कतिपयैर्बलदेवजनावनी ।

रङ्गं विविशत् राजन् गजदन्तवरायुधौ ॥

( भा० १०।४३।१६ )

कतिपय गोपोंसे घिरे हुए बलदेव और श्रीकृष्ण हाथीदाँतके आयुध धारण किये हुए रङ्गभूमिमें पहुँचे। वहाँ पहुँचकर दोनों भाइयोंने मस्त्रोंसे युद्ध किया। जब कंसके द्वारा खड़े किये हुए मुष्टिक, चाणूर, शल,

तौशल आदि मारे गये तो शेष मस्त्र अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये इधर-उधर भाग गये।

गोपान् वयस्यानाकृष्य तैः संसृष्य विजहृतुः ।

वाद्यमानेषु तूर्येषु वत्सन्ती रतनपुरी ॥

( भा० १०।४४।२६ )

तब अपने मित्रोंको ही अखाड़े (व्यायामशाला) में खँचकर उनसे खेल करने लगे। उस समय बाजे बज रहे थे। वे सखा ग्वाल-बालोंके साथ नाच-नाच कर भेरी ध्वनिके साथ अपने नृपुरोंकी झनकारको मिलाकर कुस्तीके खेल करने लगे।

यह देख कर कंस क्रोधके मारे आग-बबूला हो गया। उसने बाजे-गाजे बन्द करा दिये तथा कृष्णके सामने ही नन्दबाबा, वसुदेव-देवकी और महाराज उग्रसेनका अपमान करनेके लिए अपने सेवकोंको आज्ञा दी। कंसकी ऐसी घृष्टता देखकर कृष्ण मस्त्र-क्रीड़ाको छोड़कर उछलकर उच्च मंच पर बैठे हुए कंसके समीप पहुँचे और उसे मंचसे रङ्गभूमिमें पटककर मार डाला। अनन्तर आप अपने भाई और गोपोंको साथ लेकर निवास स्थान पहुँचे। वहाँ सर्व प्रथम अपनी योगिनामपि मोहिनी मायाका विस्तार कर श्रीकृष्ण बलरामने अनेक कार्योंको बता, अपने अन्तरङ्ग मित्रों एवं बाबा नन्दराजको भी विदा कर दिया। मायामोहित नन्द एवं गोप हतमनस्क हो श्रीकृष्ण और बलरामकी लीलाओंका गान करते हुए लुटे हुएसे ब्रजमें पहुँचे।

इधर श्रीकृष्णने ब्रजके साथियों और अपने अनन्य सखाओंका स्थान उद्धवको दिया। उन्हें अति निकट लेनेके लिये उनकी ज्ञान-गरिमाके अभिमानको

चूर्ण करने, रहस्यमयी अपनी भक्ति-भावनाकी सरस-लीलाओं और प्रेमके अनन्य स्वरूपका दर्शन करानेके हेतु अपने समीप बुलाया ।

वृष्णीनां प्रवरो मन्त्रो कृष्णस्य दयितः सखा ।  
शिष्यो बृहस्पतेःसाक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः ॥  
तमाह भगवान् प्रेष्टं भक्तमेकान्तिनं क्वचित् ।  
गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रपन्नातिहरो हरिः ॥

( भा० १०।४६।१,२ )

वृष्णिवंशीय यादवोंके माननीय मन्त्री कृष्णके प्रिय सखा, बृहस्पतिके शिष्य महान् मतिमान् उद्धवका अपने हाथ हाथमें लेकर रसिक श्रीकृष्णने आदर-पूर्वक एकान्तमें ले जाकर ब्रजकी, अपने साथी गोपोंकी तथा नन्दबाबा और माता यशोदाके प्रेमकी सारी बातें बताकर उनका समाचार लेने भेजा ।

उद्धवजीने कृष्णके आदेशसे नन्दब्रजकी ओर प्रस्थान किया और सूर्यके अस्ताचलगामी होते-होते वे ब्रजमें पहुँच गये । वहाँ पहुँच कर उद्धवने ब्रजकी दशाका निरीक्षण किया तो उन्हें सारा ब्रज हतप्रभ-सा दीख पड़ा । उन्होंने सभीको श्रीकृष्णकी लीला-रसकी मादकतामें भूमते पाया । वे सर्वप्रथम नन्द गेह पहुँचे । वहाँ पहुँचकर उन्होंने नन्दराजसे वार्ता-लाप की । तब नन्दराजने अश्रुपूरित नेत्रोंसे उद्धवसे पूछा—

अपि स्मरति नः कृष्णो मातरं सुहृदः सखीन् ।  
गोपान् ब्रजं चात्मनाथं गावो वृन्दावनं गिरिम् ॥

( भा० १०।४६।१८ )

अच्छा उद्धवजी ! श्रीकृष्ण कभी हमें याद भी करते हैं ? क्या वे अपनी माता, सुहृद सखाओं,

गोपालों और आप ही जिनके नाथ हैं—ऐसे ब्रज, गौ, वृन्दावन और गोवर्द्धन पर्वतका कभी स्मरण करते हैं ? क्या श्रीकृष्ण स्वजनोंसे मिलनेके लिये एक बार फिर यहाँ आवेंगे ? यदि मुकुन्द यहाँ आते तो हम उनके सुन्दर नेत्र, मृदुल हास्य भरे मुखार-विन्दका दर्शन तो कर लेते ।' ऐसा कहते-कहते नन्द-बाबा प्रेमसे विह्वल हो पड़े । गला रुद्ध हो गया, आँखोंसे अश्रुधारा बहने लगी, वे चुप हो गये । पास ही यशोदा माँ फफक-फफक कर रो रही थी । उन दोनोंकी ऐसी दशा देख कर उद्धवने नन्द-यशोदाके हृदयसे प्रेमको दूर करनेके हेतु ज्ञान-योगकी बातें कहनी आरम्भ की और बताया कि जिन श्रीकृष्णका तुम ध्यान कर रहे हो, वे सर्वव्यापक ब्रह्म हैं । कण-कणमें समाये हुए हैं । उन्हें ज्ञानकी दृष्टिसे देखकर आत्मतत्त्वका अनुभव करो; इसीमें तुम्हारा भ्रम है । संसार नाशवान् है, संयोग-वियोग इसमें होता ही है ।

वहाँसे उद्धव गोपियोंके समीप पहुँचे । वहाँकी स्थिति निराली ही थी । उन्हें देख उद्धव चकितसे हो ठगेसे रह गये ।

तन्मनस्कास्तवालापास्तद्विचेष्टास्तवात्मिकाः ।

तद्गुणानेव गापन्त्यो नात्मागाराणि तस्महः ॥

( भा० १०।३०।४४ )

गोपियोंका मन, उनकी बातचीत, उनकी चेष्टाएँ और उनकी आत्मा परम प्रिय श्रीकृष्णमें लीन हो चुकी थी । वे श्यामसुन्दरके गुणगानमें अपनी आत्मा और घरोंको तथा परिवारको भी भूल चुकी थी ।

उद्धवने उन्हें ज्ञान और योगकी उलटी-सीधी बातें बताकर बहुत समझाया। निर्गुण ब्रह्मकी प्रतिष्ठा करनी चाही। पर उनके समस्त उद्धवकी एक भी नहीं चली। उन्होंने पासमें उड़ते हुए एक भ्रमरको संकेत कर व्यङ्गके साथ उद्धव और कृष्णकी प्रेम-भर्त्सना की। उद्धवको भ्रमरका रूप देकर चतुराई-से न कहने योग्य बातें भी कह डालीं। श्रीकृष्णको निष्ठुर, निर्मोही आदि शब्दोंसे भूषित किया। गोपियोंके उमड़ते हुए अश्रुप्रवाहमें उद्धवकी सारी ज्ञानगरिमा बह गई। भक्तिके समस्त ज्ञानकी पराजय हुई। वह ज्ञानी भक्त से रसिक भक्त बन गये। उन पर गोपियोंका प्रेमरङ्ग चढ़ गया। और कहने लगे—

अहो पूर्णं स्मपूर्यार्षा भक्तयो लोकपूजिताः ।  
वासुदेवे भगवति वासामित्यपितं मनः ॥  
दानव्रततपोहोमजपस्वाध्यायसंयमः ।  
श्रेयोभिविधैर्धैश्चान्यैः कृष्णेभक्तिर्हि साधयते ॥

( भा० १०।४७।२३ २४ )

गोपियों ! तुम कृतार्थ हो गई हो। तुम संसारमें परम पूजनीया हो। क्योंकि तुम्हारा मन भगवान्में दृढ़रूपसे लगा हुआ है। दान, व्रत, तप, होम, जप, वेदाध्ययन, इन्द्रियदमन एवं अन्यान्य साङ्गलिक अनुष्ठानोंसे भी जो कृष्णभक्ति सिद्ध नहीं होती है वह तुम्हें सहज ही प्राप्त है।

कृष्णसम्बन्धी उद्धवने पराजित होकर गोपियोंका शिष्यत्व स्वीकार किया। उनसे प्रेम-लक्षणा भक्तिकी दीक्षा ग्रहण की और उपासक बनकर कहने लगे—

वासामहो चरणरेणुषुवासहं स्या,  
पुन्वावने किमपिपुल्लतीपधीनाम् ।

या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा  
भेजुमुकुन्दपदवीं श्रुतिभिविमृग्याम् ॥

( भा० १०।४७।६१ )

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः ।  
यातां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥

( भा० १०।४७।६३ )

अहो ! इन गोपियोंने दुस्त्यज स्वजनोंको तथा आर्य धर्मको छोड़कर वेद जिनको ढूँढते हैं, उस मुकुन्दकी पदवीको प्राप्त किया है। ये अत्यन्त धन्य हैं। मेरी तो यही अभिलाषा है कि इनके चरणोंकी रज जिनपर पड़ती है उन वृन्दावनकी लता, औषधि व झाड़ियोंके रूपको ग्रहण करूँ, जिससे इनकी चरणरज मुझ पर पड़े और मैं पवित्र होऊँ। मैं इन नन्द व्रजकी सुन्दरियोंके चरणोंकी बार-बार वन्दना करता हूँ क्योंकि इनके गाये हुए हरिकथा-गीत त्रिभुवनको पवित्र करते हैं और करते रहेंगे।

अथ गोपीरनुजाप्य यशोदानन्दमेव च ।

गोपानामन्य दाशार्हो यास्यन्नारुहे रथम् ॥

( भा० १०।४७।६४ )

इस प्रकार कई महीनों तक व्रजमें निवास कर उद्धवने अब यशोदा, नन्द और गोपोंसे वार्तालाप कर श्रीकृष्णके पास मथुरा पहुँचनेके लिये उनसे बिदा ली और रथपर सवार हुए। उद्धव यथासमय श्रीकृष्णके पास पहुँचे और उनके निकट गोप, गोपियोंकी, व्रजकी दशाका वर्णन किया। सखाके नाते बुराभला कहा, निष्ठुरताकी ओर निर्मोही स्वरूपकी भीमांसा की। उद्धवके द्वारा ऐसी बातें सुनकर परम रसिक श्रीकृष्णके नेत्रोंसे अश्रुओं

की धारा बह चली, कण्ठ भर आया, शरीरमें रोमाञ्च हो आया और ब्रजकी यादमें वे अपनेको भूल गये। परन्तु यह स्थिति अधिक समय तक नहीं रही, कार्यों की प्रचुरता एवं महती भारने उनकी स्थितिको बदल दिया। उद्धव और श्रीकृष्णका परस्पर सानिध्य और हास-परिहास सदैव चलता रहा। वह अन्तर्द्वान लीला तक दूर नहीं हुआ। उद्धव बराबर उनके साथ रहे। श्रीकृष्णने जब महान् उत्पातकी सूचना दी, तब द्वारिकामें उद्धवको कालगति विपरीत मालूम होने लगी। श्रीकृष्णने सब कुछ परित्याग कर अन्तर्द्वानका निश्चय किया तो उद्धवने श्रीकृष्णके पास पहुँच कर प्रणत होकर कहा—

नाहं तवाङ्घ्रिकमलं क्षणाद्यमपि केशव ।  
त्वक्तुं समुत्सहे नाथ स्वधाम नय मामपि ॥  
शय्यासनाटनस्थानस्नानक्रीडाशनानादिषु ।  
कथं त्वां प्रियमात्मानं वयं भक्तास्त्यजेमहि ॥

( श्रीमद्भू० ११।६।४३, ४५ )

हे केशव ! मैं आपके जगणके लिये भी आपके चरणकमलोंसे अलग रहनेका साहस नहीं कर सकता। इसलिये हे नाथ ! मुझको भी अपने साथ ही अपने धामको ले चलिये। सोते, बैठते, घूमते, घरमें, रहते, नहाते, खेलते, भोजन करते—सभी समय सेवामें रहने वाले हम अनन्य भक्त आपको कैसे छोड़ सकते हैं ? तब श्रीकृष्णने उद्धवको युग-धर्मका महत्त्व बता कर कर्म-योगके साथ अवधूत-यदुका संवाद, वर्ण-आश्रम धर्म, बद्ध-मुक्त लक्षण, सांख्य-योगके सिद्धान्त, पृथ्वी, जल, तेज आदिमें अपनी व्यापकता, सत्सङ्ग, तीर्थोंकी महिमा और विभिन्न मनुष्योंके स्वरूपका

निरूपण किया। अन्तमें भक्तिके स्वरूपका वर्णन कर उसका महत्त्व बताया।

न सावयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव ।  
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोजिता ॥

( श्रीमद्भू० ११।१४।२० )

वाग् गद्गदा ब्रवते यस्य चित्तं  
सदत्पभीक्षणं हसति क्वचिच्च ।  
विलज्ज उद्रायतिनृत्ये च  
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥

( श्रीमद्भू० ११।१४।२४ )

हे उद्धव ! योग, विज्ञान धर्म, वेदाध्ययन, तप और दान आदि साधन मुझे प्राप्त करानेमें उतने समर्थ नहीं हैं, जितना दिनोंदिन बढ़नेवाली अनन्य प्रेममयी मेरी भक्ति। एकमात्र प्रेम भक्तिसे ही मुक्त हो जाऊँगा। मेरी भक्तिसे जिसकी वाणी और हृदय गद्-गद् हो जाता है, जो ऊँचे स्वरसे बार-बार नाम लेकर मुझे पुकारता है, कभी रोता है, कभी हँसता है, कभी लज्जा छोड़कर नाचता है और कभी मेरे गुणों का गान करता है, ऐसे मेरी भक्तिसे पूर्ण भक्त न केवल अपनेको बल्कि त्रिलोकीको पवित्र कर देता है।

ऐसा सभी प्रकारका ज्ञान देकर भगवान्ने उद्धव से कहा—

गच्छोद्धव मयाऽऽदिष्टो वदर्याख्यं ममाश्रमम् ।  
तत्र मत्पादतीर्थेदि स्नानोपस्थानं शुचिः ॥

( श्रीमद्भू० ११।२६।४१ )

हे उद्धव ! मेरी आज्ञाके अनुसार तुम मेरे आश्रम बदरीवन में जाकर निवास करो उस स्थानमें मेरे चरणकमलोंसे उत्पन्न अलकानन्दा गङ्गाके जलमें

स्नान कर पवित्र हो जाओगे । श्रीकृष्णके ऐसा कहने पर—

स एवमुक्तो हरिमेधसोद्धवः  
प्रदक्षिणं तं परिसृत्य पादयोः ।  
शिरो निषायाश्रुकलाभिराद्रंषी-  
न्वपिञ्जदद्वन्द्वपरोऽप्यपक्रमे ॥  
सुदुस्त्यजस्नेहवियोगकातरौ  
न शक्नुवंस्तं परिहातुमातुरः ।  
कृच्छ्रं ययौ मूर्धनि भर्तृपादुके  
विभ्रमस्तकृत्य ययौ पुनः पुनः ॥

( श्रीमद्भाग० ११।२६।४५-४६ )

श्रीकृष्णके उपदेश पाकर उद्धवने उनकी प्रदक्षिणा की । सुख-दुःखसे परे होकर भी चलनेके समय प्रेम-पूर्ण हृदय होकर प्रभुके चरणोंमें सिर रख कर उन्हें आँसुओंसे भिगोने लगे । दुस्त्यज स्नेहके पात्र प्रभुके वियोगसे अत्यन्त कातर उद्धव उन्हें छोड़ न सकनेके कारण अत्यन्त आतुर होकर बड़े कष्टसे धैर्य धारण कर अनुग्रह चिह्नस्वरूप स्वामी श्रीकृष्णकी दी हुई पादुकाओंको सिर पर धारण कर बार-बार प्रणाम करते हुए फिर-फिर कर देखते हुए वहाँ से चले । यह हुई उद्धवकी सख्य भक्ति । सखाकी श्रेणीमें सुदामा का नाम भी आदरसे लिया जाता है । वह श्रीकृष्णके गुरु-गृहके सखा थे । सान्दीपनि गुरुके यहाँ श्रीकृष्ण और सुदामा एक साथ पढ़े थे, घूमे थे, फिरे थे और गुरुकी सेवा में शीत-घाम वर्षा सभीको सहन किये थे । श्रीकृष्ण अध्ययन समाप्त कर गुरुतर कार्यों में— भूभार-हरणमें लग गये और द्वारकाधीशका पद ग्रहण कर लिया । परन्तु सुदामा साधारण रूपसे ही अपना जीवन बिताने लगे । संकट आने पर भी उससे कभी विचलित नहीं हुए ।

सुदामा बड़े ब्रह्मज्ञानी, स्वभावसे सरल, जितेन्द्रिय शान्तचित्त, विषयोंसे विरक्त और यथेच्छासे प्राप्त वस्तुओं पर निर्वाह करने वाला था, इससे उसके परिवारमें दरिद्रताका साम्राज्य था । परन्तु उसे इसकी चिन्ता नहीं थी । श्रीकृष्णके सखाको भला इसकी चिन्ता हो भी क्यों ? उसके सामने माया बन्धन क्या ? परन्तु उनकी पतिव्रता स्त्रीके हृदयमें दरिद्रताका दुःख अवश्य खटकता था । अतः उसने एक समय अपने पतिको अपने सखा श्रीकृष्णका भ्रमण दिलाया और उनसे द्वारका जानेका आग्रह किया । पत्नीकी बार-बार प्रार्थना और “उत्तमश्लोक” अपने साथीके दर्शनोंकी भावनाने उसके हृदयको झकझोर दिया । वह प्रस्तुत हो गया । पत्नीने दो-चार घरोसे माँग कर चार मुट्ठी चावल भेंटके लिये ला दिये और उन्हें फटे हुए एक बस्त्रमें किसी रूपसे बाँध दिये । विप्र तण्डुलोंकी पोटलीको कांसमें दबाये हुए बड़ी कठिनाईसे द्वारका पहुँचा ।

वहाँ पहुँच कर विचार करने लगा कि अब श्रीकृष्णके राजमहलमें किस प्रकार पहुँचा जाय । अन्त में दूँदता हुआ श्रीकृष्णके महलके द्वार पर जा ही पहुँचा और द्वारपालोंसे श्रीकृष्णके पास अपने आगमनकी सूचना पहुँचाई । जैसे ही घनश्यामने प्रिय मित्रके आगमनकी बात सुनी, वह सब कुछ छोड़ कर दौड़े ।

तं विलोक्यान्पुतो वुरात् प्रियापर्यङ्कमास्थितः ।  
सहसोत्थाय चाभ्येत्य दोर्ष्या पर्यग्रहीन्मुदा ॥  
सख्युः प्रियस्य विप्रर्वरङ्गसङ्गातिनिर्वृतः ।  
प्रीतो व्यमुञ्चवन्विन्दून् नेत्राभ्यां पुष्करेक्षणः ॥

( श्रीमद्भाग० १०।८०।१८-१९ )

जिस समय सुदामा श्रीकृष्णके महलमें पहुँचे, उस समय श्रीकृष्ण प्रियाके पलङ्ग पर लेटे हुए थे। सुदामाको दूरसे आता हुआ देख कर शीघ्र ही पलङ्गसे उठकर भेंट करनेके लिये दौड़ पड़े और दोनों हाथोंको फैला कर प्रिय सखा सुदामाको हृदयसे लगा लिया।

कुचेल मलिन अङ्ग होते हुए भी प्रिय सखाके अङ्ग-सङ्गसे भगवान्को परम प्रसन्नता हुई, आनन्दके कारण उनके नेत्रोंसे प्रेमके आँसू उमड़ पड़े तथा वाणी गद्गद् हो गयी। भावोंका प्रवाह बढ़ चला। अनन्तर प्रियबन्धुको अपने सुसज्जित पलंग पर बिठाया। अपने मित्रका सभी प्रकारसे पूजन किया और अपने हस्तकमलसे उनके चरणोंको धोकर उस जलको अपने शरीर पर धारण किया। मित्रके शरीरको चन्दन, अगरु, कुंकुम और सुगन्धित द्रव्योंसे चर्चित किया।

कुचेलं मलिनं क्षामं द्विजं वमनिसंततम् ।

देवो पयचरत् साक्षाच्चामर व्यजनेन वं ॥

( श्रीमद्भा० १०।८०।२३ )

मलिन वस्त्र धारण किये दुबले-पतले कृश शरीर-वाले सुदामा ब्राह्मणकी स्वयं भगवती रुक्मिणीजी अपनी सखियोंके साथ रत्नदण्डयुक्त चमर और व्यजन लेकर सेवा करने लगीं। इस आतिथ्यसे अन्तःपुरके सभी व्यक्तियोंको बड़ा ही आश्चर्य हुआ। श्रीकृष्णने हास-परिहास करते हुए सान्दीपनि गुरुके यहाँकी कथा तथा उसके पश्चात्की सारी बातें एक-एक करके पूछीं। अनन्तर कदा—‘मित्र ! भाभीने मेरे लिए जो उपहार भेजा है, वह मुझे क्यों नहीं

देते ?’ परन्तु सुदामा वहाँके विराट वैभवको देख कर संकोचवश अपने कच्चे चिउड़ाकी पोटली कैसे निकालकर भेंट करता। भगवान्ने मित्रके मनकी बात जानकर बड़े प्रेमसे कहा—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।

तदहं भक्त्युपहृतमदनामि प्रयतात्मनः ॥

( श्रीमद्भा० १०।८१।४ )

‘मित्र ! जो व्यक्ति प्रेमभक्तिसे फल-फूल अथवा पत्ता-पानीमेंसे कोई भी वस्तु मुझे समर्पित करता है, तो मैं शुद्धचित्त भक्तका वह प्रेमोपहार केवल स्वीकार ही नहीं करता, बल्कि तुरंत भोग भी लगा लेता हूँ।’ फिर भी सखाने लज्जावश अपनी पोटलीसे कुछ भी निकाल कर नहीं दिया, तब श्रीकृष्णने स्वयं मित्रके बगलसे पोटली खँच ली—

इत्थं विचिन्त्य व्रतनाच्चौरबद्धाद्विजन्मनः ।

स्वयं जहार किमिदमिति पृथुकतण्डुलान् ॥

नन्वेतदुपनीतं मे परमप्रीणनं सखे ।

तर्पयन्त्यङ्ग मां विश्वमेते पृथुकतण्डुलाः ॥

इति मुष्टिं सकृज्जग्वा द्वितीयां जग्धुमादये ।

तावच्छीर्णगृहे हस्तं तत्परा परमेष्ठिनः ॥

एतावतालं विश्वात्मन् सर्वसम्पत्समृद्धये ।

अस्मिंल्लोकेऽथवानुष्मिन् पुंसस्त्वत्तोषकारणम् ॥

( श्रीमद्भा० १०।८१।८-११ )

ऐसा विचार कर श्रीकृष्णने—‘यह क्या है ?’—कहते हुए शीघ्रतासे ब्राह्मणकी बगलमें दबी हुई चिउड़ेकी पोटलीको जिसे कि ब्राह्मण लज्जावश अधिकतर दबाता जा रहा था—पकड़ कर खींच लिया और कहा— ‘मित्र ! ये चिउड़े मुझको और सम्पूर्ण

जगतको तृप्त कर देंगे। यह तो मेरे लिए बड़ी सुन्दर भेंट है। इन्हें देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। इस प्रकार कहते हुए भगवान् ने शीघ्रतासे उसमेंसे एक मुट्टी चिउड़ा लेकर चबाने लगे और दूसरी मुट्टी ज्यों-ही भरी, त्यों-ही पास हीमें बैठी हुई हरिचरण-कमलोंकी सेविका लक्ष्मी रुक्मिणीजीने भगवान् कृष्णका हाथ पकड़ लिया और और कहा—‘हे विश्व-रूप बस कीजिए, आपकी इतनी ही प्रसन्नता मनुष्यों-को आत्यन्तिक श्रीवृद्धिके लिए पर्याप्त है। इतनेसे चिउड़ोंसे ही इसे इस लोककी और परलोककी सब-प्रकारकी सम्पत्ति तथा ऐश्वर्य प्राप्त हो चुका है।

सुदामाने भोजन आदिके पश्चात् उस रातको वही पर सुखसे बितायी। सुदामाको यहाँ स्वर्ग-सुखसे भी अधिक सुख मिला। दूसरे दिन प्रातःकाल ही सुदामाजी अपने घरके लिए चल पड़े। श्रीकृष्ण भी बहुत दूर तक उनके साथ पहुँचाने गये और अंत-में उनको बिदा कर लौट आये।

सुदामाजी मार्गमें चलते-चलते यह सोचने लगे कि ‘मैंने अपने पुण्योंके फलस्वरूप भगवानका दर्शन पाया। परन्तु मेरे हृदयमें यह नगण्य धनकी लालसा कैसे पैदा हो गयी? मेरा यह विचार अच्छा नहीं था, क्योंकि स्वर्ग, मोक्ष, पृथ्वी और रसातलकी सारी सम्पत्ति तथा समस्त योग-सिद्धियोंकी प्राप्तिका मूल उनके चरणोंकी पूजा ही है। इसलिए दयालु कृष्णने यह सोचकर मुझे थोड़ासा भी धन नहीं दिया कि कहीं यह दरिद्र धन पाकर बिल्कुल मत-वाला न हो जाय और मुझे भूल न जाय।’ इस प्रकार सोचते-विचारते और मन-ही-मन भगवानद्वारा

स्वागत-सत्कार आदिकी सराहना करते-करते अपने गाँवमें उपस्थित हुए। परन्तु वहाँ पहुँच कर अपने पुराने टूटे-फूटे घरके बदले विराट ऐश्वर्य, धन-सम्पत्ति और वैभवका दर्शन करके भगवानकी कृपा समझ करके भाव-विभोर हो गये। अंतमें श्रीकृष्णकी आराधनामें ही अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया।

इसके आगे श्रीकृष्णके परम सखा अर्जुनका स्थान भी बड़े महत्वका है। कंसका बध करनेके पश्चात् जब श्रीकृष्ण अपने स्वजनोंका निरीक्षण करने चले तो वहाँ आप-अपनी बुआ कुन्ती देवीके समक्ष भी पहुँचे और अपने भाइयों पाण्डवोंसे भेंट की। उस समय आपका सभी पाण्डवोंसे प्रीति होने पर भी अर्जुनसे विशेष प्रगाढ़ प्रेम हो गया। वही प्रेम शनैः-शनैः बढ़ता गया। अर्जुनके प्रेममें भ्रातृत्व और मित्रत्वका समन्वय हो गया। अर्जुन श्रीकृष्ण के अनन्य साथी बन गये। महाभारतके युद्धमें मित्रत्वके नाते ही सारथीका छोटा कार्य भी स्वीकार कर लिया और अर्जुनका सारा उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया। अर्जुनने भी अपने सखाको आत्म समर्पण कर ‘शिष्यस्तेऽहं साधि मां त्वां प्रपन्नं’ इस भावनाको विस्तारित किया। अर्जुनके हृदयमें उत्पन्न मोहको एक गुरुकी भाँति, मित्रकी भाँति दूर कर गीताका सृजन कर कर्म-योग, ज्ञान-योग और भक्तियोगकी शिक्षा दी। विराट स्वरूपका दर्शन करा अपना व्यापकब सिद्ध किया, उन्हें व्यवहारकी सारी बातें सिखाई और युद्धमें कौरवोंको पराजित कराकर विजयका श्रेय अर्जुनको प्रदान किया।

अर्जुन और श्रीकृष्णके प्रेमकी थाह लेना बड़ा कठिन कार्य है। वह उनके साथ सदैव छायाकी

भाँति घूमते रहे । श्रीकृष्णके अन्तर्द्वानके परचात् जब द्वारकासे लौट कर अर्जुन पुनः अपने जेष्ठ भ्राता युधिष्ठिरके पास आये, तो वह श्रीकृष्णका गुणगान करते हुए बहुत बिकल होकर रुदन करते हुए कहने लगे—

यो भीष्मकर्णगुरुशल्पचमूज्वदभ्र  
राजन्यवर्यरथमण्डलमण्डितासु ।  
अप्रेचरो मम विभो रथयूयपाना  
मायुर्मनांसि च दृशासहस्रोज आच्छन्त् ॥  
यद्दोषु मां प्रणिहितं गुरु भीष्मकर्णं  
नप्तृत्रिगतंशलसंघब बाह्लिकाश्रः ।  
अस्त्राण्यमोघ महिमानि निरूपितानि  
नोपस्पृशुर्त् हरिवाग्निवासुराणि ॥  
नर्माण्युदाररुचिरस्मितशोमितानि  
हे पार्थ हे अर्जुन सखे कुरुनन्दनेति ।  
संजल्पितानि नरदेव हृदिस्पृशानि  
स्मर्तुर्लुंठन्ति हृदयं मम माधवस्य ॥  
शय्यासनाटनविकल्पनभोजनादि  
ध्वंश्यादयस्य ऋतवानिति विप्रलब्धः ।  
सख्युः सखेव पितृवत्तनयस्य सर्वं  
सेहे महान् महितया कुमतेरघं मे ॥

( श्रीमद्भाग. १।१५।१५, १६, १८, १९ )

जिन्होंने मेरे रथके आगे महाभारत युद्धमें बैठ कर भीष्म, शल्य, कर्ण, द्रोणाचार्य आदि महातेजस्वी वीरोंकी सेनाकी ओर देख कर निज दृष्टिसे उनके उत्साह, धन, अस्त्र, कौशल और आयुका हरण कर लिया, आज मैं उन्हीं कृष्णसे ठगा गया ।

उनकी कृपासे भीष्म, कर्ण, अश्वत्थामा, सुशर्मा, शल्य, सिन्धु-नरेश जयद्रथ और बाल्हीक आदि वीरोंके अमोघ अस्त्र-शस्त्र मेरा कुछ नहीं कर

सके, ठीक वैसे ही जैसे नृसिंहके भक्तप्रह्लादका दैत्य-गण कुछ भी अमङ्गल नहीं कर सके ।

वह श्रीकृष्ण सदा उदार, रुचिर मंदमुसकानके साथ मुझसे परिहास करते थे और कभी-कभी 'हे पार्थ ! हे अर्जुन ! हे सखे ! हे कुरुनन्दन !' आदि मनोहर सम्बोधन करते थे, वही सब मधुर वाक्य आज स्मरण करनेसे मेरे हृदय को व्याकुल करते हैं ।

मैं उनके साथ सोता, बैठता, घूमता, वार्तालाप और भोजन करता था । अतः मेरा उनका ऐसा सहज व्यवहार हो गया था कि मैं कभी-कभी 'हे वयस्य ! तुम बड़े सत्यवादी हो !'—ऐसा कह कर आक्षेप भी करता था; परन्तु मुझ कुबुद्धिके सब अपराधोंको महानुभाव श्रीकृष्ण सहते रहे, ठीक उसी प्रकार जैसे मित्र-मित्रके पिता अपने पुत्रके अपराधको क्षमा करता है ।

इस प्रकार अर्जुनकी अलौकिक सख्य-भक्तिका स्वरूप हमारे सामने आता है ।

श्रीमद्भागवतमें सख्य-भक्तिके यही उदाहरण उपलब्ध होते हैं । इस सख्य-भक्तिको हम तीन भागों में बाँट सकते हैं । पहले सख्य-भक्तिमें ब्रजके गोपालोंका निरूपण किया जा सकता है । दूसरे स्थान में सान्दीपनि गुरुके यहाँके शिष्य सुदामा और उद्धवकी सख्य-भक्ति है, तीसरे भागमें हम अर्जुनकी सख्य-भक्तिको प्रहण करते हैं । यह सख्य-भक्ति भक्तोंके हृदयका आधार है, जीवनकी सफलताका परिचायक है ।

—बागरोदी श्रीकृष्णचन्द्र शास्त्री, साहित्य-रत्न, काव्यतीर्थ

# प्राचीन संस्कृत-साहित्यमें ब्रज और उसका महत्व

( लेखक—वि० वा० वामुदेवकृष्ण चतुर्वेदी एम ए. व्याकरणाचार्य चतुष्टय, सा. र. प्रधानाचार्य )

## मङ्गलाचरणम्—

ब्रज समुद्र, मधुरा कमल, वृन्दावन मकरन्द ।  
ब्रज वनिता सब पुष्प हैं, मधुकर श्री ब्रजचन्द ॥

## ब्रजका लक्षण—

गुणातीत परं ब्रह्म व्यापकं ब्रज उच्यते ।  
सदानन्दं परं ज्योतिर्मुक्तानां पदमव्ययम् ॥  
( स्कन्द पुराण मा० )

जो सदानन्द स्वरूप, परं ज्योति, मुक्तोंको प्राप्त होने योग्य व्यापक गुणातीत परं ब्रह्म है, वही ब्रज है ।  
वेदोंमें ब्रज—

अतएव ब्रजका वर्णन वेद-उपनिषद्, पुराण एवं सभी धर्म-ग्रन्थोंमें पर्याप्त रूपमें मिलता है ।  
संहिताओंमें १२ वन, ३२ उपवनोंके नाम प्राप्त होते

हैं । विश्वका कोई ऐसा विषय नहीं है जिसका मूल-स्रोत वेदोंमें न मिलता हो । इसलिये वेदको 'अनन्ता वै वेदा' आदि मन्त्रोंमें अनन्त ब्रह्म बतलाया है ।

गोलोकका सूक्ष्म उल्लेख ऋग्वेद २५ अष्टकके विष्णु-सूक्तमें भी प्राप्त होता है ।

## मन्त्र—

ता वां वास्तून्युष्मसि गमध्वं  
यत्रगावो भूरिशृङ्गा अयासः ।  
अत्राह तदुखायस्य वृष्णः  
परमं पदमवभाति भूरि ॥

अर्थ—वां=तुम दोनोंके ( श्रीमतीराधा और सर्वेश्वर श्रीकृष्णके )

## १२ वन—

१. भद्रवन
२. बेलवन
३. लौहवन
४. भाण्डीरवन
५. महावन
६. तालवन
७. खदिरवन
८. बहुलावन
९. काम्यवन
१०. कुमुदवन
११. मधुवन
१२. वृन्दावन

## ३२ उपवन—

१. महावन
२. गोकुल
३. खदिर
४. खण्डीर
५. नन्द
६. नन्दीश्वर
७. नन्द खण्ड
८. पलास
९. अशोक
१०. केतकी
११. सुगंध मोदन
१२. कैलिवन
१३. भोजनवन
१४. सुख प्रसाधन
१५. वस्मवन
१६. शेषशायिवन

१७. शाम
१८. पूष्य
१९. दधि
२०. प्रामवन
२१. वृषभानुवन
२२. संकेतवन
२३. नीपवन
२४. रासवन
२५. क्रीडावन
२६. धूसरवन
२७. कोकिलावन
२८. सत्ववन
२९. विश्ववन
३०. कुमुदवन
३१. वरसुकवन
३२. चन्दनवन

धास्तूनि=निवास स्थानोंको ( कुञ्जोंको )

गमध्वै=प्राप्त करनेके लिये ।

उश्मसि=चाहते हैं । यह वह स्थान है जहाँ लम्बे सींगवाली कामधेनु इधर-उधर विचरती हैं ।

अत्रतत्=वहाँ ही वह गोलोकाख्य धाम है ।

उरुगायस्य वृष्णः=महनीयकीतिवाले कृष्णका धाम—प्रपञ्चातीत अप्राकृत धाम अपनी महिमासे ही प्रकाशित रहता है ।

वेदमें ब्रज, राधा, नन्द, कृष्ण आदिके नाम मिलते हैं ।

“त्वं वृचक्षसा वृषभानुपूर्वीः कृष्णस्वग्ने अरुषो विभाहि”  
(ऋ० ३।१५।३)

इसमें—वृषभानुपूर्वी ( श्रीराधा ) का नाम और उसकी महिमाका स्पष्ट उल्लेख है ।

वेदमें—रासलीला, वंशीवादन, यमुना, गोप और गोपियोंका भी उल्लेख है—ऋग्वेदके निम्न मंत्रोंमें—

‘गायन्ति त्वा०’ मंत्रमें—रास तथा वंशीका उल्लेख

‘स्त्रियः सर्तस्तां०’ मंत्रमें—रासकी शंकाका उल्लेख

‘ब्रजे गावो०’ मंत्रमें—ब्रज और गोपोंका उल्लेख

‘कृष्णं नितानं०’ मंत्रमें—कृष्णका उल्लेख

‘सप्तार्धगर्भा०’ मंत्रमें—देवकीके छ. पुत्रोंके पश्चात्

भगवान्के अवतारका वर्णन है ।

‘यद्गोपावदिति०’ मंत्रमें—वृन्दावनस्थ गोपोंका

‘कृष्णादुदस्थात्०’ मंत्रमें—पूतना वधका

‘यत्र मथा विवधनाते’ मंत्रमें—यमलाजुन मोक्षका

‘ब्रजं विष्णु०’ } इन दोनोंमें गोवर्द्धनलीलाका  
‘दाधारदक्ष०’ } वर्णन मिलता है ।

इस प्रकार वेदोंमें (१) इन्द्रमान-भङ्ग, (२) अभिषेक (३) केशी-वध, (४) कालिय-दमन, (५) अक्रूर-दर्शन, (६) नित्य-विहार, राधा नाम आदिका वर्णन मिलता है ।

वेदोंका तात्पर्य इतिहास-पुराणोंमें ही स्पष्ट रूप से वर्णित है ।

उपनिषदोंमें ब्रज—

गोपालतापिनी उपनिषद्में १२ वनोंका तथा पु० बो० उप० में ४२ वन और उपवनोंका उल्लेख है

(७) मुण्डक, (८) कठक, (९) बृहदारण्यक, (१०) छान्दोग्य आदिमें भी भगवद्धामका वर्णन है ।

संहिताओंमें ब्रज—

(११) ब्रज ब्रह्माण्डसे ऊपर है तथा यह ब्रज भगवान् भीकृष्णकी इच्छासे ही प्रपंचमें प्रकटित है ।

(१२) ‘यं व्यामसुन्दरमचिन्त्यगुणस्वरूपम् ।

गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि ॥’

नारद पाञ्चरात्रमें भी इसी मतकी पुष्टि प्राप्त होती है ।

‘नित्यं वृन्दावनं नाम ब्रह्माण्डोपरि संस्थितम् ।’

( मा० पा० )

( ३ ) वृन्दावनमें सात आवरण हैं—

‘सप्तावरणकं स्थानं श्रुतिमृष्यं निरन्तरम् ।’

(१) ऋ. २ अ. विष्णु सू०, (२) ऋ. ४।६।२५, (३) ऋ. १।५।११, (४) ऋ. ३।३।३, (५) ऋ. ४।३।१०, (६) ऋ. ३।२।१४, (७) २।१।१०, (८) १।२।१२, (९) ६।१।१५, (१०) १।३, (११) गर्ग संहिता, (१२) ब्रह्म संहिता ।

(१३) ब्रह्म संहिता

(२) गोकुल बैकुण्ठ है, वृक्ष तथा लताएँ तपस्वी हैं—

‘गोकुलं वनं बैकुण्ठं तापसा तत्रते द्रुमाः ।’

(३) आल मन्दार संहितामें—

‘कृष्ण एवाक्षरातीतः सच्चिदानन्द लक्षणः ।’

(४) सनत्कुमार संहितामें—

‘तत्रस्यं पुरुषं ध्यात्वा पुनरागमनं नहि ।’

(५) ब्रह्म - संहिता और गौतमीय संहितामें लिखा है कि—

‘इदं वृन्दावनं रम्यं ममधामैव केवलम् ।’

ब्रज ही आपका धाम है ।

पुराणोंमें ब्रज—

(६) पुराण १८ हैं । (७) उपपुराण भी १८ हैं । भृगु, मुद्गल आदि कुछ अतिपुराण भी प्राप्त होते हैं ।

इन पुराणोंको सात्विक, राजस, तामस, मिश्रित चार भागोंमें रखा जाता है ।

सात्विक पुराणोंमें ब्रजभूमि एवं श्रीराधाका माहात्म्य भरा पड़ा है । (८)

पर राजसादिमें भी अभाव नहीं है । इन सबमें ब्रजभूमिका श्रेष्ठत्व श्रीमद्भागवतमें ही विशेषरूपसे प्राप्त होता है ।

तन्त्रोंमें ब्रज—

‘अथ वृन्दावनं ध्यायेत् सर्वदेवनमस्कृतम् ।’

( गी० त० )

रासोल्लास तन्त्रमें—नित्य विहारका वर्णन मिलता है—

‘किशोरी सुन्दरी राधा किशोर श्यामसुन्दर ।’

२. कृष्णोपनिषद्	पद्म
३. अ० ६।१०५ श्लोक	लिङ्ग
४. ३२ पटल ४-५ श्लोक	गरुड़
५. ४।४।४	कूर्म
६. मार्कण्डेय	स्कन्द
भक्त्य	
भागवत	
भविष्य	
ब्रह्म	
ब्रह्माण्ड	
ब्रह्मवैवर्त	
विष्णु	
धाराद	
वामन	
वायु	
अग्नि	
नारद	

(७) देवी भागवत

महेश्वर  
ब्रह्माण्ड  
आदित्य  
पराशर  
सौर  
नन्दिकेश्वर  
साम्ब  
कालिका  
वारुख  
औशनस  
मानस  
कापिल  
दुर्वासस  
शिब-धर्म  
पृथ्वरदीब  
नारसिंह  
सनत्कुमार

(८) पुराणोंमें सर्वत्र प्राप्त होनेके कारण उनके उदाहरण यहाँ देना हमने पिष्टपेषण समझ कर छोड़ दिया है ।

ऊर्ध्वान्नाय तन्त्रमें—व्रजको सबका सार कहा है— से छीतस्वामीके शब्दोंमें उस अलौकिक व्रजभूमिके निवासकी याचना कर लेखको यही समाप्त करते हैं—

‘दुग्धात् सारं यथा क्षीरम् ।’

‘व्रजेश्वरी व्रजश्रेष्ठा वृन्दावन-विनोदिनी ।’

( राधा व्रजेश्वरी हैं )

सनत्कुमार तन्त्रमें—लिखा है कि देवताओंको भी व्रजमें सुख प्राप्त होता है ।

इनके अतिरिक्त—काव्य, नाटक, प्राकृत तथा भारतकी विभिन्न भाषाओंमें व्रजकी महिमा मुक्त कण्ठसे कवियोंने गायी है । अन्तमें हम भी रास-रसेश्वर आनन्द कन्द व्रजचन्द भगवान् श्रीकृष्णप्रभु

एहो विधिना तोसो अंबरा पसरि मांगी  
जनम-जनम दीजौ मोहि याही व्रज वसिवा ।  
प्रहीरकी जाति समीप नन्द घर  
घरी-घरी घनश्याम सों हेरि-हेरि हंसिवा ॥  
दधि के दान मिस व्रज की वीथिन में  
भकभोरी स्याम सों अंग-अंग को परसिवा ।  
छीत स्वामी, प्रभु श्रीगोवरधन धरि  
शरद रंन रस राग को विलासिवा ॥

### श्रीशचीसुताष्टकम्

नव गौरवरं नव पुष्पशरं नवभावधरं नवलस्यपरम् ।  
नव हास्यकरं नव हेम वरं प्रणमामि शचीसुतगौरवरम् ॥१॥  
नवप्रेमयुतं नवनीतशुचं नववेशकृतं नव प्रेमरसम् ।  
नवधा विलसत् शुभ प्रेममयं प्रणमामि शचीसुतगौरवरम् ॥२॥  
हरिभक्तिपरं हरिनामधरं करजप्यकरं हरिनामपरम् ।  
नयने सततं प्रणयाश्रुधरं प्रणमामि शचीसुतगौरवरम् ॥३॥  
सततं जनता-भवतापहरं परमार्थ-परायण-लोकगतिम् ।  
नवलेहकरं जगतापहरं प्रणमामि शचीसुतगौरवरम् ॥४॥  
निजभक्तिकरं प्रियचारुतरं नटनर्तन नागरराजकुलम् ।  
कुलकामिनि-मानसलास्यकरं प्रणमामि शचीसुतगौरवरम् ॥५॥  
करतालवलं कलकण्ठरवं मृदुबाद्यसुवीणिकया मधुरम् ।  
निजभक्तिगुणावृत-नाट्यकरं प्रणमामि शचीसुतगौरवरम् ॥६॥  
युगधर्मयुतं पुनर्नन्दसुतं धरणीसुचित्रं भवभावोचितम् ।  
तनुध्यानचितं निजवासयुतं प्रणमामि शचीसुतगौरवरम् ॥७॥  
अरुणं नयनं चरणं वसनं वदने स्वलितं स्वकनामधरम् ।  
कुरुते सुरसं जगतः जीवनं प्रणमामि शचीसुतगौरवरम् ॥८॥

# वृन्दावनकी पृष्ठभूमि

## (श्व) भौतिक दृष्टिसे वृन्दावन

[पूर्व प्रकाशित, वर्ष ६, संख्या ५, पृष्ठ ११२ से आगे]

श्रीवज्रनाभ महाराजके शासन-कालमें वृन्दावन अपनी खोई हुई समृद्धिको पुनः प्राप्त कर चुका था। धार्मिक दृष्टिसे इसका वही सम्मान पुनः प्राप्त होने लग गया था, जो कि वेदोपनिषत्, पुराण, तंत्र-स्मृति आदिमें वर्णित है। इस सम्बन्धमें एक प्राचीन कथा सुननेमें आती है कि श्रीभगवान्ने जब प्रयागको सब तीर्थोंका राजा (तीर्थराज या प्रयागराज) घोषित कर दिया तो श्रीवृन्दावनको छोड़कर अन्य सभी तीर्थ अपना-अपना "उपहार" लेकर प्रयागराजकी सेवामें प्रस्तुत हुए। श्रीप्रयागराजने इसे अपना अपमान समझकर वृन्दावनके उपहारके साथ उपस्थित न होनेकी शिकायत श्रीभगवानसे की। इस पर श्रीभगवानने हँसकर उत्तर दिया कि "मैंने तुम्हें तीर्थोंका राजा बनाया है न कि अपने घरका।" यह सुनकर प्रयागराज लज्जित होकर श्रीवृन्दावनको बारम्बार प्रणाम करने लगे।

अनेकों देवालियों और घाटोंका निर्माण श्रीवज्रनाभजीके समयमें यहाँ हुआ। इसके अतिरिक्त अपनी स्वाभाविक सुरम्यता और उपयोगिताके लिए भी यह एक अनुपम स्थल उस समय था। तात्पर्य यह कि श्रीवृन्दावनने पुनः अपने लुप्त वैभवको, कलिके प्रारम्भमें पूर्ण रूपसे प्राप्त कर लिया था।

श्रीवृन्दावनके आकर्षणसे आकर्षित होकर दूर-दूरके लोगोंका यहाँ यातायात बना रहता था। विदेशी पर्यटक भी समय-समय पर यहाँ आते-जाते रहते थे, जिसके कारण यह वृन्दावन धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिसे एक बहुत बड़ा केन्द्र बन गया। ई० पूर्व चौथी शतीमें मेगस्थनीज भारतवर्षमें आया। उसने शूरसेन प्रदेशके मेथोरा और क्लीसोबोरा नामक दो तत्कालीन बहुत बड़े नगरोंका उल्लेख किया है। प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता जनरल कनिंघमके अनुसार मेथोरा ही प्रसिद्ध मथुरा एवं क्लीसोबोरा ही आधुनिक वृन्दावन है ( विशेष विवरण हेतु देखिये—कनिंघमस ऐशियट ज्योग्राफी ऑफ इन्डिया, कलकत्ता, १६२४ ई० पृष्ठ ४२६ )।

श्रीवृन्दावनसे प्राप्त की गई पुरातत्व-सामग्रीके आधार पर यह कहा जा सकता है कि मौर्य, शक, कुषाण और गुप्त कालमें मूर्ति-निर्माणकी दृष्टिसे यह वृन्दावन अत्यन्त सम्पन्न था। वृन्दावनसे प्राप्त की गई निम्न पुरातत्व-सामग्री इस समय मथुराके पुरातत्व-संग्रहालयमें सुरक्षित है—

### कुषाण कालीन—

(अ) सन् १६४१ ई० में श्रीवसन्तीदेवी धर्मशाला (लोई बाजार, वृन्दावन) की नींव खोदते समय

लगभग १० फुट नीचे दो विशाल एवं कलापूर्ण प्रतिमाएँ ( शाल-भंजिकाएँ ) जिनकी ऊँचाई क्रमशः ८ और ४॥ फुट है, प्राप्त हुई हैं ( इनकी संग्रहालय संख्या २८८७ और २८८८ है ) ।

(आ) कुबेरकी मूर्तिका भाग—संग्रहालय संख्या ३३७७

( इ ) पूजक मूर्तिका घड़ ३३७८

( ई ) दो कलापूर्ण गवाक्ष २०७२ और २५८४

### गुप्त कालीन—

(क) विष्णुका घड़ ३३७५

(ख) ब्रह्माकी मूर्ति ३३७६

(ग) पत्थरका गवाक्ष ३३७९

(घ) पुरुष-सिर ३३८०

प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता श्रीकृष्णदत्तजी वाजपेयीने लिखा है कि “आधुनिक वृन्दावनके ठीक सामने स्थित माँटके पास “इटोकरी” नामक टीलेसे कनिष्क, विमकैड फाइसिस तथा चष्टन नामक शक और कुषाण राजाओंकी विशाल मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, जहाँ ये मूर्तियाँ थीं वह “देवकुल” कहलाता था” (देखिये वृन्दावनांक, संवत् १७६ ) । अतः वृन्दावनसे प्राप्त पुरातत्व सामग्रीके आधार पर यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि मौर्य ( ई० पू० ३२० से ई० पू० १८४ ), शक ( सन् ३२० से ५३५ ई० ) में अनेक विशाल मूर्तियोंकी स्थापना यहाँ हुई । कलापूर्ण मूर्ति-निर्माणकी दृष्टिसे उक्त काल वृन्दावनके इतिहासमें तो चिरस्मरणीय है ही, इसके अतिरिक्त उक्त शासकोंकी श्रद्धा भी श्रीवृन्दावनके प्रति अटूट थी । उन्होंने इसकी सुरक्षाकी व्यवस्था की, पर्यटकोंके विश्राम हेतु जलाशय, विश्रामगृह, मठ, मन्दिर, आश्रमादिका

निर्माण कराया तथा समय-समय पर उनके जीर्णोद्धारकी भी व्यवस्था की । तत्कालीन स्तूपों, मन्दिरों और विहारोंके अनेक भग्नावशेष आज भी यहाँ श्रीयमुना-किनारे परिलक्षित होते हैं ।

महाकवि कालीदासके काल-सम्बन्धमें अनेक मतभेद होते हुए भी उनका समय चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ( ३७४-४१३ ) से अर्वाचीन सिद्ध नहीं होता है । उनके वर्णनसे स्पष्ट होता है कि कुबेरके चैत्ररथ नामक उद्यानसे भी यह वृन्दावन सुन्दर था—

संभाव्य भर्तारममुं युवानम्,

मृदुप्रवालोत्तरपुष्पशय्ये ।

वृन्दावने चैत्ररथादतूने,

निर्विशयतां सुन्दरि यौवनश्री ॥

( रघुवंश ६।५० )

सौन्दर्य एवं वैभवपूर्ण वस्तुको देखकर उसके प्रति कठोरसे भी कठोर हृदय भी आविर्भूत हो जाता है और उस वस्तुको प्राप्त करनेके लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहता है । यदि किसी कारणवश वह वस्तु प्राप्त न हो सकी तो उसके प्रति ईर्ष्या-द्वेष-भाव होना भी सहज है ।

ब्राह्मण धर्मके कट्टर विरोधी बौद्धोंका और सनातन धर्मावलम्बियोंका संघर्ष इतिहास प्रसिद्ध है । कट्टर बौद्धोंने वृन्दावनके ब्राह्मणोंको कोल्हूमें पिलवानेमें भी लेशमात्र संकोच नहीं किया । उनके धार्मिक साहित्यको अग्नि तथा वरुणदेवोंकी भेंट कर दिया । इस संघर्षमें वृन्दावनके अनेकों भव्य एवं विशाल मठ-मन्दिर श्रीविग्रहादि विनष्ट हो गये । जो कुछ श्रीविग्रहादि इस संघर्षमें बच गये थे, उन्हें भी

लोगोंने बौद्धोंके आतंकसे भयभीत होकर यत्र-तत्र छिपा दिया।

अस्तु, यह भौतिक वृन्दावन बौद्ध-संघर्षके समय पुनः श्रीहत् व ध्वंश रूपमें दिखाई दिया, किन्तु गुप्त-वंशीय नरेशोंने इस क्षतिकी पूर्ति करके शीघ्र ही विनष्ट हुआ आकर्षण पुनः प्रतिष्ठित कर यहाँके सौन्दर्यकी रक्षा की।

अद्वैतवादके विशेष प्रवर्तक श्री आद्य शङ्कराचार्यजी श्रीवृन्दावनकी रमणीयतासे अत्यधिक मुग्ध थे। उन्होंने अपनी अन्तिम अवस्थामें सब वाद-विवादोंको छोड़कर यहाँ निवास करनेकी अति उत्कृष्ट लालसा प्रकट की है—

कदा वृन्दारण्ये तरणि तनया पुण्य पुलिने ।

स्मरन् श्रीगोपालं निमिषमिव नेष्यामि दिवताम् ॥

इतिहास प्रसिद्ध गजनीपति महमूद ( वि. ११वीं शती ) लूटमार करता हुआ वृन्दावनके सन्निकटवर्ती महावन क्षेत्र तक आया। वहाँके तत्कालीन राजा कूलचन्दके हजारों सैनिक उक्त संघर्षमें वीर गतिको प्राप्त हुए। महमूदके नवें आक्रमणका वर्णन उसके मीरमुंशी अलाउद्दीने अपनी पुस्तक 'तारीखे यामिनी'में किया है। इसके अतिरिक्त वदायूनी, फिरता आदि मुसलमान इतिहासकारोंने भी उसके हृदय-विदारक अनेक आक्रमणोंका उल्लेख किया है। इन लुटेरोंके घोर आतंकोंसे पीड़ित यहाँकी जनता ब्राहि-ब्राहि करती हुई अन्यत्र जाकर बसने लगी। पुजारीजनोंने विवश होकर विशाल श्रीविग्रहोंको पुनः अत्र-तत्र छिपाना और छोटे-मोटे श्रीविग्रहोंको पिटारोंमें छिपाकर अन्यत्र भोजना प्रारम्भ कर

दिया। इस सम्बन्धमें पूज्य बाबा कृष्णदासजीकी निम्न पंक्तियोंका उल्लेख यहाँ करना अनुचित न होगा—

“हिन्दू धर्मके विरोधी गजनीपति महमूदादिकने मथुरा मण्डल पर चढ़ाई करके मथुरा नगरी तथा समस्त ब्रजमण्डलका ध्वंस किया था। पुजारी-सेवक लोग सब म्लेच्छोंके भयसे कहीं वनके बीच, कहीं कुआँ, नदी या तालाबमें, कहीं घरतीके नीचे देव-मूर्तियोंको छिपाकर प्राणमात्र लेकर भाग गये ( देखिये—नारायण भट्ट चरितामृतकी भूमिका )।

सारांश यह है कि शक, कुषाण और गुप्तवंशोंके राजाओं द्वारा निर्मित मठ, मन्दिर आश्रमादि महमूद आदि लुटेरोंके आतंकसे श्रीविहीन हो गए।

वि. १२वीं शतीमें प्रसिद्ध गीतगोविन्दकार श्री-जयदेवजीका आगमन वृन्दावनमें हुआ। लगभग उन्ही दिनों काश्मीरी उद्भट विद्वान विल्हण भी यहाँ आकर कुछ दिन ठहरे। श्रीविल्हणने श्रीहत् एवं ध्वस्त वृन्दावनका वर्णन अपने “देव चरित”में किया है ( द्रष्टव्य—देवचरित १८।८७ )।

अस्लादीन खिलजी ( सन् १२६६-१३१५ ई० ) और मु० तुगलक ( सन् १३३५-१३५१ ई० ) के शासन कालमें भी मुसलमानों द्वारा वृन्दावनके अनेक मन्दिर तोड़े गये; वे लोग वृन्दावनको “बुत परस्तोंका प्रमुख अड्डा” मानकर अत्यन्त धृष्टाकी दृष्टिसे भी इसे देखते थे ( देखिये—श्रीबाजपेयीकृत ब्रजका इतिहास पृ० १३८ )।

(क्रमशः)

—केदारदत्त तत्राड़ी, एम. ए., सा. र., साहित्यालङ्कार

# श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा

[ गतांक पृष्ठ १२० से आगे ]

भक्तिरसामृतसिन्धु (पू. वि. साधन-भक्ति लहरी १४८, १५०-१५१ श्लोक ) में इस विषयको बड़े ही सुन्दर रूपसे व्यक्त किया है—

तत्तद्भावादि-माधुर्यं श्रुते धीर्यदपेक्षते ।  
नात्र शास्त्रं न युक्तिश्च तल्लोभोत्पत्ति-लक्षणम् ॥  
कृष्णं स्मरन् जनचास्य प्रेष्ठं निज-समीहितम् ।  
तत्तत् कथारतश्चासी कुर्याद्वासं व्रजे सदा ॥  
सेवा साधकरूपेण सिद्धरूपेण चात्र हि ।  
तद्भाव-लिप्सुना कार्या व्रजलोकानुसारतः ॥

रागानुगाभक्तिका कारण रागात्मिकजनोंके भावोंके प्रति लोभका होना है। यह लोभ शास्त्र या युक्तिसे उत्पन्न नहीं होता। बल्कि उन-उन भाव-माधुरियोंका श्रवण करके उनमें निमग्न होनेके लिए बुद्धि जिस चीजकी अपेक्षा करती है, वह चीज विशुद्ध लोभके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अपने अभीष्ट कृष्णके प्रियजनोंके भावोंकी प्राप्तिके लिये जिनको लोभ है, वे साधक रूपसे अर्थात् यथावस्थित देह द्वारा और सिद्ध रूपसे अर्थात् अन्तरिचिन्तित अभीष्ट कृष्णसेवोपयोगी देहके द्वारा व्रजमें सधदा वास करते हुए श्रीकृष्णके व्रजस्थ प्रियतमजनोंके तथा उनके अनुगत-जनोंका अनुसरण करते हुए निरन्तर श्रीकृष्णकी सेवा करेंगे, कृष्णकी लीला-कथाओंका श्रवण-कीर्तन और स्मरण करेंगे—यही व्रजरागानुग भक्तोंकी परिपाटी या साधन-प्रणाली है। वैधीभक्तिके विषयमें जिन कीर्तन आदि अङ्गोंका वर्णन किया गया है, उनमेंसे

अपनी सेवाके अनुकूल सभी अङ्ग रागानुग साधक देहमें भी किये जायेंगे। जिनका लोभ दास्य रसके प्रति है, वे पत्रक आदिके भाव तथा उनकी चेष्टा-मुद्राओंका अनुसरण करेंगे, जिनका सख्यरसके प्रति लोभ है, वे सुबल आदिके भाव और उनकी चेष्टा-मुद्राओंका अनुसरण करेंगे, जिनका वात्सल्यरसके प्रति लोभ है, वे श्रीनन्द-यशोदा आदिके भाव और उनकी चेष्टा-मुद्राओंका अनुसरण करेंगे तथा जिनका मधुर-रसके प्रति लोभ है, वे व्रजगोपियोंके भाव और उनकी चेष्टा-मुद्राओंका अनुसरण करेंगे।

रागात्मिका भक्ति दो प्रकारकी है—कामानुगा और सम्बन्धानुगा। उसी प्रकार रागानुगा भी दो प्रकारकी होती है। उनमें कामानुगा ही प्रधान और बलवती होती है। कामानुगा दो प्रकारकी होती है—संभोगेच्छामयी और तद्भावेच्छामयी। संभोगेच्छामयी भक्ति केलितात्पर्यवती होती है। यहाँ केलिका तात्पर्य श्रीकृष्णके साथ कृष्णप्रेयसियोंके मिलनसे है। तद्भावेच्छामयी भक्ति केवलमात्र व्रजदेवीकी भाव-माधुरीकी कामनावाली होती है। कृष्णमें पितृत्व आदि सम्बन्धोंका आरोप करनेवाली भक्ति सम्बन्धानुगा कहलाती है। द्वारकापुरीमें महिषी-भावानुगा भक्ति ही मधुररसमें सम्बन्धानुगा है। व्रजमें इस रसमें कामानुगाके अतिरिक्त दूसरी मधुररति नहीं है।

अब यह जान लेना आवश्यक है कि श्रीचैतन्य-महाप्रभुने जगतके जीवोंके लिये जो शिक्षा दी है, उसके द्वारा साधकके हृदयमें सहसा रागानुग होनेकी वासना होती है। रागमार्गद्वारा भजन ही उनके द्वारा अनुमोदित है। जीवोंके सौभाग्यसे यदि उन्हें श्री-गौराङ्गदेवके कृपापात्रों—श्रीगौराङ्गदेवके प्रियजनोंका सङ्ग मिल जाय तो ब्रजजनोंके भावके प्रति अवश्य ही लोभ उत्पन्न होगा। जब तक ऐसा सङ्ग नहीं मिलता, तब तक अधिकांश साधक वैधीभक्तिका ही अवलम्बन करते हैं। श्रीगौराङ्गदेवके चरणोंका आश्रय करनेसे रागमार्गमें अवश्य ही प्रवेश होगा। रागमार्गमें लुब्ध साधकके लिये पहले रागानुगा-भक्तिका साधन कर्त्तव्य है। रागानुगा-भक्तिके लिये जो अधिकार होता है, वह अत्यन्त उच्च होता है। ब्रजवासीजनोंके भावके प्रति लोभ उत्पन्न होने पर इतर विषयोंमें रुचि नहीं रहती और पाप-पुण्य, कर्म, अकर्म, विकर्म, ज्ञान तथा वैराग्यसे छुटकारा मिल जाता है—

षादी श्रद्धा ततः साधुसंगोऽयं भजन क्रिया ।  
ततोऽनर्थनिवृत्तिः स्यात्ततो निष्ठा रुचिरततः ॥  
अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमान्युदं चति ।  
साधकानामयं प्रेम्नः प्रादुर्भावि भवेत्क्रमः ॥

(भ. र. सि. पू. वि ४।११)

वैध-मार्गमें सबसे पहले श्रद्धा होती है। उसके बाद साधु-सङ्ग, तत्पश्चात् भजन द्वारा अनर्थोंकी निवृत्ति होती है। तदनन्तर निष्ठा, रुचि, आसक्ति और भाव होता है। इसमें भाव चिरकाल साध्य बना रहता है। परन्तु लोभ उत्पन्न होने पर इतर

विषयोंमें लोभका अभाव होनेके कारण अति सहज ही अनर्थ नष्ट हो जाते हैं। भाव भी इसी लोभके साथ-ही-साथ उदित होता है। रागमार्गमें केवल आभास और कपटताको दूर करना आवश्यक है। यदि ये दूर न हों तो उनसे विषम-विकार और अनर्थोंकी ही वृद्धि होती है। ऐसी अवस्थामें भ्रष्ट राग ही विशुद्ध राग है—ऐसी प्रतीति होती है। और अंतमें विषय-सङ्ग ही प्रबल होकर जीवकी अधो-गतिका कारण बन जाता है।

श्रीचैतन्य महाप्रभुके चरणाश्रित साधक पुरुष शुद्ध लोभके माध्यमसे रागानुगा भक्तिका ही अव-लम्बन करते हैं। वैधी-भक्तिमें वे सद्गुरुका पदाश्रय करके श्रीविग्रह-सेवा, वैष्णव-सङ्ग, भक्ति-शास्त्रोंका आदर, भगवानकी लीला-स्थलियोंमें वास और श्री-भगवन्नामका अनुशीलन करते हुए अपनी सिद्ध-देहमें ब्रजवासीके भावका अनुसरणपूर्वक मन-ही-मन भावमार्गद्वारा कृष्णकी सेवा करते हैं। उनमेंसे अत्यन्त सौभाग्यवान साधकही साधुसङ्गमें रह कर भक्तिके भेदोंमें श्रेष्ठ हरिनामका आश्रय ग्रहण करके भगवत्-सेवामें नियुक्त होते हैं। नामाश्रय ग्रहण करनेमें दीक्षा और पुरश्चर्या आदि विधियोंकी अपेक्षा नहीं रहती। नामाभास और नामापराधसे दूर रह कर क्रमशः निरन्तर कृष्णनाम करते हैं। निरन्तर हरिनाम करते हुए श्रीविग्रहकी कृपादृष्टिकी भावनाके साथ श्रीनाम और रूपकी निरन्तर आलोचना करते हैं। क्रमशः श्रीविग्रहके गुणसमूह, रूप और नाम—ये सभी एक ही साथ आलोचित होने लगते हैं। तदनन्तर स्वरूप-गत लीला-भावनाके साथ गुण, रूप और नामका अनुशीलन होने लगता है। धीरे-धीरे रसोदय भी

हो जाता है। रसका उदय होना ही चरम प्राप्ति है। विशेष बात यह है कि नाम-अनुशीलनके समयसे ही यदि रसोन्मुखी व्याकुलता रहे तो थोड़े ही दिनोंमें रसोदय हो पड़ता है।

नामापराध दस प्रकारके हैं। पद्मपुराणमें इनका वर्णन इस प्रकारसे है—

- (१) सतां निन्दा नाम्नः परमपराधं वितनुते  
यतः ख्यातिं यातं कथमुसहते तद्विगर्हाम् ।
- (२) शिवस्य श्रीविष्णोर्यं इह गुणनामादि-सकलं  
धिया भिन्नं पश्येत् स खलु हरिनामाहितकरः ॥
- (३) गुरोरवज्ञा (४) श्रुतिशास्त्रनिन्दनं  
(५) तदार्यवादो (६) हरिनाम्नि कल्पनम् ।
- (७) नान्नो बलाद् यस्य हि पापबुद्धि-  
नं निन्दते तस्य यमैहि बुद्धिः ॥
- (८) धर्म-व्रत-त्याग-हुतादि-सर्व-  
शुभक्रिया साम्यमपि प्रमादः ।
- (९) अश्रद्धधाने विमुखेऽप्यशृण्वति-  
यश्चोपवेशः शिवनामापराधः ॥
- (१०) श्रुतेऽपि नाममाहात्म्ये यः प्रीतिरहितो नरः ।  
अहं-ममादि परमो नाम्नि सोऽप्यपराधकृत् ॥

(१) शुद्ध-भक्तोंकी निन्दा करना और उनसे विद्वेष करना। (२) ब्रह्मा और शिव आदि दूसरे देवताओंको भगवानसे पृथक् अर्थात् स्वतन्त्र ईश्वर या उनको कृष्णके समान मानकर अपनी कृष्ण-निष्ठाको आघात पहुँचाना। (३) साधु और गुरुदेवकी अवज्ञा करना। (४) भक्तिशास्त्रोंकी अवहेलना करना। (५) शास्त्रोंमें लिखे गये हरिनामके माहात्म्यको सत्य न मानकर केवल अति स्तुतिमात्र समझना।

(६) भगवन्नामको कल्पित समझना। (७) हरिनामके बल पर पापकर्म करना। (८) अप्राकृत हरिनामको धर्म, व्रत, त्याग और होम आदि प्राकृत शुभ कर्मोंकी समश्रेणीमें समझना। (९) अनाधिकारी (अद्धाहीन) लोगोंको हरिनाम देना। (१०) हरिनामका माहात्म्य सुनकर भी नामके प्रति अविश्वास और अरुचिके साथ तथा देहात्मबुद्धिका त्याग किये बिना हरिनाम ग्रहण करना। ये दस नामापराध हैं।

नामाभास दो प्रकारका होता है—(१) छाया-नामाभास और (२) प्रतिबिम्ब-नामाभास। स्वरूप-ज्ञानसे रहित अपराध शून्य अवस्थामें जो हरिनाम उच्चरित होता है, वह नामाभास कहलाता है। वही सत्सङ्गमें रहते-रहते उनकी कृपासे स्वरूप-ज्ञान प्राप्त हो जाने पर शुद्धनाम होता है। अन्याभिलाषिता, ज्ञान-कर्म-योग और वैराग्य बुद्धिसे ढके हुए नामको प्रतिबिम्ब-नामाभास कहते हैं। कहीं-कहीं यह छाया-नामाभासप्राय हो पड़ता है, तो कहीं-कहीं नामापराध। सत्सङ्गमें निरन्तर हरिनाम अनुशीलनसे ही नामापराध दूर होता है; अन्य किसी भी दूसरे उपायसे नामापराध दूर नहीं होता।

शुद्ध हरिनाम ग्रहण करनेवाले वैष्णवजन ही “श्रीचैतन्यचरणानुगत वैष्णव” के रूपमें प्रसिद्ध हैं। सान्तर (जो निरन्तर नहीं होता) नामानुशीलनकारी—‘वैष्णव’ है। निरन्तर नामानुशीलनकारी—‘वैष्णवतर’ है। तथा जिनको दर्शन करने मात्रसे दूसरोंके मुखसे शुद्ध हरिनाम उच्चरित हों, वे ‘वैष्णवतम’ अर्थात् सर्वोत्तम हैं। श्रीचैतन्यचरितामृत मध्य १५।११ तथा १६।७२, ७४-७५में श्रीचैतन्य महाप्रभुजी कहते हैं—

अतएव. जाँर मुखे एक कृष्ण नाम ।  
 सेई त वैष्णव, करिह ताँहार सम्मान ॥  
 कृष्णनाम निरन्तर जाँहार बदनै ।  
 सेइ वैष्णव श्रेष्ठ, भज ताँहार चरणे ॥  
 जाँहार दर्शने मुखे आइसे कृष्णनाम ।  
 ताँहारे जानिह तुमि 'वैष्णव-प्रधान' ॥  
 'क्रम करि' कहे प्रभु 'वैष्णव'-लक्षण ।  
 'वैष्णव', 'वैष्णवतर' आर 'वैष्णवतम' ॥

उपरोक्त लक्षणोंसे युक्त साधु-संतोंका सङ्ग ही करना कर्तव्य है। वैष्णवका सम्मान करना चाहिये। वैष्णवतर और वैष्णवतमका चरणश्रय-प्रदण करना चाहिये। ऐसे-ऐसे वैष्णवोंको लेकर ही गृहस्थवैष्णवोंको महोत्सव करना चाहिये। वैष्णव, चाहे वे गृहस्थ हो अथवा गृह-त्यागी हों, अपनी-अपनी श्रेणीमें सभी समान हैं। उदाहरण स्वरूप वैष्णवतम श्रेणीके गृहस्थ वैष्णव तथा त्यागी वैष्णव—दोनों ही समान पूज्य हैं; उनमेंसे किसी एक को कम पूजनीय समझना ठीक नहीं। वैष्णव सङ्ग करनेके लिये अपने से श्रेष्ठ वैष्णवको ढूँढ लेना चाहिये। इसके लिये भक्तिरसामृतसिन्धुमें (पृ० वि० साधनभक्तिलहरीमें) श्रीरूपगोस्वामीका उपदेश है—

सजातीयाशये स्निग्धे साधो संगः स्वतो वरे ।

श्रीमद्भागवतार्थानामास्वादी रसिकैः सह ॥

वैष्णवजनके पूर्वकृत पापों, क्रमशः क्षीण हो रहे पापों अथवा अकस्मात् (दैवात्) उपस्थित हो जाने वाले पापोंके प्रति दोष दृष्टि नहीं रखनी चाहिये।

“न प्राकृतत्वमिह भक्तजनस्य पश्येत्”

(उपदेशामृत छठवाँ श्लोक)

किसी अच्छे उद्देश्यके बिना किसीके पाप कार्योंकी चर्चा नहीं करनी चाहिये। सब जीवोंके प्रति यथोचित दया करनी चाहिये। अपनेको दीन-हीन जानकर सबका यथायोग्य सम्मान करते हुए स्वयं अमानी बननेकी चेष्टा करनी चाहिये। गृहस्थ वैष्णव अनासक्तभावमें कृष्ण-सम्बन्ध भावको पवित्ररूपमें मिलाकर यथायोग्य विषयोंको स्वीकार करते हुए हरिनाम रसका साधन करेंगे। कृष्ण-रुचिके उदय होनेपर जब विषयरुचि सम्पूर्ण रूपसे दूर हो जायेगी, तब अपने-आप अभाव-संकोचरूप एक प्रकारका स्वाभाविक वैराग्यभाव उदित होगा। चेष्टा द्वारा वह वैराग्य उत्पन्न नहीं कराया जा सकता है।

दोनों प्रकारकी साधन भक्तिमें सद्गुरुकी आवश्यकता होती है। वैधीभक्ति-जिज्ञासुको सद्गुरु उसकी रुचिके अनुसार आवश्यक विधियोंके पालन का उपदेश करेंगे तथा अनर्थ-निवृत्तिके पथकी शिक्षा देंगे। दूसरी तरफ रागानुगा-भक्ति-जिज्ञासुको उसकी स्वभाविक रुचिके उपयोगी रसके पथका निर्देश करेंगे। रुचि अथवा लोभ दो प्रकारका होता है—क्षणिक और नैसर्गिक। बहुतसे साधक श्रीनन्दबाबा और सुबलसखा आदिके चरित्रोंका भवण करके उन-चरित्रोंमें विशेषरूपसे आनन्द प्राप्त करते हैं; कभी-कभी थोड़ा भाव भी दिखलाते हैं; परन्तु उनका वह आनन्द और भाव थोड़ी ही देर तक ठहरता है। ऐसे भावको “क्षणिक भाव” कहा जा सकता है। परन्तु ऐसे भावसे काम नहीं चलनेका। उस समय परीक्षा करके यह देखना उचित होगा कि दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—इन चारों रसोंमेंसे किस रसके प्रति जिज्ञासुकी नैसर्गिक रुचि है। नैसर्गिक

भावके प्रति लक्ष्य रख करके ही सद्गुरु शिष्यको उसी भावके अनुगत करेंगे । अन्यथा अनधिकार दोषवशतः उपदिष्ट-भाव स्थायी नहीं होगा । सभी जिज्ञासु मधुर रसके अधिकारी हैं या हो सकते हैं—वह बात ठीक नहीं । जो गुरु उपरोक्त अधिकारका ठीक-ठीक विचार करनेमें समर्थ नहीं हैं, उन्हें सरलता के साथ जिज्ञासु साधकको दूसरे उपयुक्त गुरुके पास

जानेके लिये परामर्श दे देना चाहिये । सद्गुरु पदाश्रय किये बिना शिष्यके लिये दूसरा कोई उपाय नहीं है ।

ग्रन्थ-विस्तारके भयसे यहाँ साधक भक्तिके विषय में संक्षेप रूपमें लिखा गया है । विस्तारसे जाननेके लिए भक्तिरसामृतसिन्धुके पूर्व-विभाग तथा भक्ति सन्दर्भकी भलीभाँति आलोचना करनी चाहिये ।

## ग्यारहवाँ परिच्छेद

श्रीकृष्ण-प्रीति ही जावका साध्य है

सारे वेदोंका प्रणयन करके तथा उन सबका पूर्णरूपसे अध्ययन एवं विवेचन करके भी लोक पिता-मह ब्रह्माजी हजारों कल्पोंमें भी जिस तत्त्वको जान न सके, सर्वज्ञान-सम्पन्न तथा समस्त योग और वैराग्य मार्गके एकेश्वर होकर भी देवाधिदेव महादेव जिस तत्त्वकी सदा-सर्वदा खोज करते रहते हैं और मुक्तजीव भी जिस वस्तुको स्व-महिमा जानकर नित्य आदर करते हैं, उस अखिल साधन-तत्त्वका एकमात्र साध्यवस्तु एवं सभी शास्त्रोंका चरमप्रयोजनरूप परम पुरुषार्थ है—प्रेम । यहाँ उसी प्रेमके सम्बन्धमें दीनदयाल श्रीचैतन्य महाप्रभुके कृपाकणका अचलम्बन करके कुछ विचार प्रस्तुत किया जा रहा है । श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने श्रीरूप गोस्वामीको प्रेम-तत्त्वके सम्बन्धमें जो संक्षेपमें उपदेश किया था, वह श्रीचैतन्य-चरितामृत रूप सम्पुटमें छिपी चिन्तामणि स्वरूप है—

ब्रह्माण्ड भ्रमिते कीन भान्यवाण जीव ।

गुरु - कृष्ण - प्रसादे पाय भक्तिलता - बीज ॥

माली हृदया करे सेई बीज आरोपण ।  
श्रवण - कीर्तन - जले करये सेचन ॥  
उपजिया बाड़े लता 'ब्रह्माण्ड' भेदि जाय ।  
विरजा, ब्रह्मलोक भेदि परब्योम पाय ॥  
तवे जाय तदूपरि गोलोक - वृन्दावन ।  
कृष्णचरण - कल्पवृक्षे करे आरोहण ॥  
ताहाँ विस्तारित हृदया फले प्रेमफल ।  
इहाँ माली सेंचे नित्य श्रवण-कीर्तनादि जल ॥  
यदि बैष्णव - अपराध उठे हाथी माता ।  
उपाड़े वा छिण्डे, तार सुखि जाय पाता ॥  
ताते माली यत्न करि करे आरवण ।  
अपराध - हस्तीर जँछे ना हय उद्गम ॥  
किन्तु यदि लतार सङ्गे उठे उपशाखा ।  
भुक्ति-मुक्ति - बाँछा, यत असंख्य तार लेखा ॥  
निषिद्धाचार, कुटिनाटी, जीव - हिसन ।  
लाभ, पूजा, प्रतिष्ठादि - यत उपशाखाण ॥  
सेक - जल पाव्या उपशाखा बाढ़ि जाय ।  
स्तम्भ हृदया मूल - शाखा बाढ़िते ना पाय ॥

प्रथमेई उपशाखा करये छेवन ।  
 तबे मूलशाखा बाढ़ि जाय वृन्दावन ॥  
 प्रेमफल पाकि पड़े माली आस्वादय ।  
 लता धवलम्बि माली कल्पवृक्ष पाय ॥  
 ताहाँ सेइ कल्पवृक्षेर करये सेंचन ।  
 सुखे प्रेमफल - रस करे आस्वादन ॥  
 एइ त परम फल—परम पुरुषार्थ ।  
 जाँर भागे मृगतुल्य चारि पुरुषार्थ ॥

( चं० च० म० १६।१५१-१६४ )

श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा कथित इस रूपकको श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीने क्या ही अपार-पारिद्धत्यके साथ अतीव प्राञ्जलरूपमें उपरोक्त पयारों में वर्णन किया है। यदि जीव इन पयारोंका अर्थ भँलीभाँति समझ करके वैसा ही कार्य करने लगे, तो वह सहज ही धन्य हो सकता है। राशि-राशि शास्त्र-ग्रन्थोंके पाठसे जो फल नहीं मिलता है, वही फल इन कतिपय पंक्तियोंको भलीभाँति समझनेसे सहज ही पाया जा सकता है। कर्म और ज्ञानमार्गके चक्करमें पड़कर जीव अनादिकालसे आवागमन कर रहे हैं। जिस बार भक्ति-वासनारूप सुकृति प्रबल हो जाती है, उसी बार जीवकी भक्तिके प्रति श्रद्धा उदित होती है। श्रद्धा होने पर वह साधु-गुरुका पदाश्रय ग्रहण करता है और उनके निर्देशानुसार उस भक्तिलताके बीज-स्वरूप श्रद्धाको अपने हृदयक्षेत्रमें अच्छी तरहसे बोता है। उस समय जीव स्वयं माली बनकर उसे हरिनाम आदि भवण-कीर्तन रूप जलसे सिंचता है। भवण-कीर्तनरूपी जलको पाकर भक्तिलता-बीज अंकुरित होकर क्रमशः बढ़ते-बढ़ते जड़ीय जगतको भेदकर चिञ्जगतकी

सीमारूप विरजाको पार कर निर्विशेष ब्रह्मधामको भी अतिक्रमकर चिद्विलासमय परव्योममें प्रवेश करती है। ब्रह्माण्ड पार करते समय और भी एक प्रकरणकी प्राप्ति होती है; उसका नाम कृष्ण-कृपा है। जीव अपने चित्स्वरूपमें अतीव सुदृढ़ है; इसीलिये उसे चित्कण भी कहते हैं। जब वह अपने स्वरूपकी आलोचना करते-करते चित्स्वरूपको टकनेवाली जड़-उपाधियों और जड़ देहका त्याग करता है, उस समय उसकी चित्-सत्ता अत्यन्त सुदृढ़ होनेके कारण नष्ट-प्राय होने लगती है। ऐसी दशामें कृष्णभक्तोंकी विशेष कृपासे कृष्णकी कृपा जीव-सत्ताकी रक्षा करती है। वह कृपा है—चित्शक्तिगत ह्लादिनीशक्ति, जो अत्यन्त प्रभाव-शाली है। माया दूर होते समय चिद्विशेषको नष्ट होनेसे रक्षाकर जीवकी रक्षाके लिये अमसर होकर वे साधन भक्तिमें भावके रूपसे उदित होती हैं। उसी भावके सहारे जीव रति प्राप्त होकर क्रमशः उर्द्धगति प्राप्त करते हैं। ह्लादिनीशक्तिकी कृपाके बिना जीव प्रेमरूप प्रयोजनको पानेका कभी भी अधिकारी नहीं हो सकता। ह्लादिनीका बल पाकर ही जीवकी चिद्वृत्ति ब्रह्मधामको भेदकर परव्योममें प्रवेश कर सकती है। परव्योमके ऊपरी भागमें श्री-गोलोक-वृन्दावन है। पूर्वोक्त भक्तिलता जो परव्योम तक बढ़ती हुई आ पहुँची थी, अब उसके ऊपरीभाग श्रीगोलोक-वृन्दावनमें पहुँचकर वह श्रीकृष्णके चरणरूप कल्पवृक्षके ऊपर फैल गयी। यहीं पर उस लतामें प्रेमरूपी फल लगाने लगे। इधर माली ( जीव ) हरिनामादि भवण-कीर्तनरूप जलसे लता-मूलको निरन्तर सिंचता रहता है। जिस समय लता

अंकुरित होकर बढ़ने लगती है, उस समय मालीको उसकी रक्षाके लिये अनेक प्रकारसे सावधान रहना पड़ता है। वैष्णव - अपराध अर्थात् साधु-भक्तोंके प्रति हिंसा-द्वेष और निन्दादि रूप अपराध ही उन्मत्त हाथी स्वरूप है, जो कभी कभी भक्तिलताको तोड़ डालता है, जिससे लताकी पत्तियाँ सुख जाती हैं और कभी-कभी तो वह उस लताको जड़से ही उखाड़ कर फेंक देता है। ऐसे वैष्णव-अपराधरूपी हाथी भक्तिलताके समीप न आने पावे—इसके लिये मालीको बहुत ही सावधान रहनेकी आवश्यकता होती है। अर्थात् भक्ति साधकको वैष्णव-अपराधसे सर्वदा दूर रहनेकी चेष्टा करनी चाहिए। भक्तिलताके लिए और भी एक दूसरी बाधा है—उसके साथ उपशाखाओंका उगना, जो श्रवण-कीर्तनरूपी जलको पाकर इतनी अधिक बढ़ जाती हैं कि मूल भक्तिलताको चारों ओरसे ढक कर उसे बढ़ने ही नहीं देती। ये उपशाखाएँ हैं—भोग, मोक्ष, सिद्धि, कामना, पापाचार, कुटिनाटी ( व्यर्थके विषयोंमें मनोनिवेश ), जीव-हिंसा, क्रूरता, शठता, प्रतिष्ठाकी कामना, अर्थ और पुण्य आदि प्राप्तिमें आग्रह। इसी प्रकार और भी अनेक उपशाखाएँ हैं। माली सावधानीसे इन सब उपशाखाओंको प्रारम्भमें ही—उगते-उगते ही उखाड़ कर फेंक देता है। ऐसा करनेसे मूलशाखा अबाध गतिसे जड़ जगतको पार करके अप्राकृत धाम वृन्दावन तक चली जाती है। वहाँ उसमें प्रेमफल पक-पक कर गिरते रहते हैं, जिनका माली परम आनन्दके साथ आस्वादन करता है। यही प्रेम परम पुरुषार्थ है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चतुर्वर्ग इस पञ्चम पुरुषार्थ प्रेमके समीप लक्ष्यके समान हैं।

अब प्रेमका स्वरूप और उसके प्रकारादिका संक्षेपमें वर्णन किया जा रहा है। पहले 'भाव'की परिभाषा बतलाते हुए श्रीरूप गोस्वामीजी कहते हैं—

शुद्धसत्त्व विशेषात्मा प्रेमसूर्यांशु साम्यभाक् ।  
रुचिभिश्चित्तममृष्यकृदसौ भाव उच्यते ॥

( भ. र. सि. पू. वि. ३१ )

[ अर्थात् जो भक्ति शुद्धसत्त्व स्वरूपा है, प्रेमरूप (उदय होने जा रहे) सूर्यकी किरण स्थानीय है, तथा रुचिद्वारा चित्तको आर्द्र करने वाली है, उसे भाव कहते हैं ]

पुनः प्रेमके सम्बन्धमें कहते हैं—

सम्भक् ममृणितस्वान्ते समत्वातिशयाद्धितः ।  
भावः स एव साम्नात्मा बुधः प्रेमानिगद्यते ॥

( भ. र. सि. प्रे. ल. १ म श्लोक )

कृष्णके प्रति शुद्धसत्त्व विशेष स्वरूप, अतिशय प्रगाढ़ ममतासम्पन्न आर्द्रभावको ही प्रेम कहते हैं। सर्वप्रकाशिका स्वरूप-शक्तिकी सम्बित्-नामक वृत्तिको शुद्धसत्त्व कहते हैं। मायाशक्तिके अन्तर्गत जो सत्त्व हैं, वे शुद्धसत्त्व नहीं—मिश्रसत्त्व हैं। कृष्णके प्रति प्रगाढ़ ममतासम्पन्न आर्द्रभाव—चिच्छक्तिगत ह्लादिनीवृत्ति विशेष है। ये दोनों एकत्र मिलित होने पर जीवके हृदयमें जो परमवृत्तिरूप चमत्कार भाव उदित होता है, उसे ही विशुद्ध प्रेम कहते हैं। जड़ जगतमें मायाकी सम्बित् और ह्लादिनी—ये दोनों वृत्तियाँ एकत्र मिलकर जिस जड़ोय प्रेमको उत्पन्न करती हैं, वह विशुद्ध चिद्गत प्रेमका हेय प्रतिफलन ( छाया ) मात्र है।

शुद्ध सत्त्व-स्वरूप भाव तथा आर्द्रतारूप चेष्टा—

ये दोनों ही प्रेममें लक्षित होते हैं। भाव ही स्थायी है, उसके प्रारम्भिक उदयको 'रति' कहते हैं; जैसे—

साधनभक्ति हृदये ह्य 'रति'र उदय ।

रति गाढ़ हृदये तार 'प्रेम' नाम कय ॥

प्रेम वृद्धिक्रमे—स्नेह, मान प्रणय ।

राग, अनुराग, भाव महाभाव ह्य ॥

( चं. च. म. १७६-१७७ )

अर्थात् साधन भक्तिसे 'रति'का उदय होता है। यही रति ( भाव ) प्रगाढ़ होने पर 'प्रेम' कहलाती है। फिर यह प्रेम बढ़ता हुआ क्रमशः स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग भाव और महाभावकी अवस्था तक पहुँचता है।

भावको प्रीतिका अंकुर कहा गया है। इसके उदय होनेपर कैसी अवस्था होती है, उसका श्री-चैतन्यचरितामृतमें बड़ा ही चमत्कारपूर्ण वर्णन किया गया है—

एइ नव प्रीत्यांकुर यार चित्त ह्य ।

प्राकृत-क्षोभे तार क्षोभ नाहि ह्य ॥

कृष्ण-सम्बन्ध विना व्यर्थ काल नाहि जाय ।

भुक्ति-सिद्धि-इन्द्रियार्थ तारे नाहि भाय ॥

'सर्वोत्तम' आपनाके द्रिन करि माने ।

कृष्ण कृपा करिवेन—दृढ़ करि जाने ॥

समुत्कण्ठा ह्य सदा लालसा-प्रधान ।

नामगाने सदा रुचि लय कृष्णनाम ॥

कृष्ण-गुणाख्याने ह्य सर्वदा आसक्ति ।

कृष्णलीला स्थाने करे सर्वदा वसति ॥

( चं. च. म. २३।२०-२१ )

अर्थात् प्रीतिका अंकुर—यह भाव जिस

सौभाग्यवान साधकके चित्तमें उग जाता है, उसके स्वभावमें निम्नलिखित नौ लक्षण लक्षित होते हैं—

(१) प्राकृत-क्षोभ अर्थात् क्रोध, चित्तचांचल्य आदि-का कारण उपस्थित होने पर भी उसका चित्त लुब्ध नहीं होता। (२) उसका कोई भी समय व्यर्थ नहीं होता अर्थात् वह सर्वदा अपने तन, मन और वचन-से कृष्णसम्बन्धी क्रियाओं, चिन्तनों एवं कीर्तन आदिमें ही लगा रहता है। (३) सांसारिक भोग-विषयों, स्वर्गसुखों, नाना प्रकारकी सिद्धिजन्य सुखों तथा भुक्ति-सुख—इन सबके प्रति स्वाभाविक विरक्ति हो जाती है। (४) सर्वोत्तम होने पर भी वैसा साधक अपनेको दीन-हीन मानता है। (५) उसे यह दृढ़ आशा हो जाती है कि 'कृष्ण मुझ पर अवश्य ही कृपा करेंगे।' (६) उसके हृदयमें यह उत्कंठा बनी रहती है कि 'मुझ पर कब कृष्णकी कृपा होगी?' (७) कृष्णनामके कीर्तन करनेमें उसकी बड़ी रुचि होती है। (८) कृष्णकी लीलाकथाओंके श्रवण-कीर्तनमें अतिशय आसक्ति हो पड़ती है और (९) कृष्णकी लीलास्थलियोंमें ही निवास करता है। श्रीरूप गोस्वामीने भी 'भक्तिरसामृतसिन्धुमें (पू.वि. रतिभक्ति लहरीके ग्यारहवें श्लोकमें) भी ऐसा ही कहते हैं—

क्षान्तिरव्यर्थकालत्वं विरक्तिमानशून्यता ।

आशाबन्धः समुत्कण्ठा नामगाने सदा रुचिः ॥

आसक्तिस्तद्गुणाख्याने प्रीतिस्तद्वसतिस्थले ।

इत्यादयोऽनुभावाः स्युर्जातभावाङ्कुरे जने ॥

[ साधकके चित्तमें भावका अंकुर उदय होने पर उसके स्वभावमें क्षान्ति, अव्यर्थकालत्व, विरक्ति, मानशून्यता, आशाबन्ध, समुत्कंठा, नाम-कीर्तनमें

रुचि, कृष्णकी लीलाकथाओंमें आसक्ति और उनकी लीला-स्थलियोंमें निवास आदि अनुभाव समूह परिलक्षित होते हैं । ]

यह रति ही प्रेमकी पहली अवस्था है तथा प्रेम ही रतिकी गाढ़ावस्था है । प्रेम यदि सूर्यस्वरूप है, तो रति या भाव उसकी किरणस्वरूप है । रतिके उदय होने पर सात्त्विक भाव-समूह अल्प-अल्प परिमाणमें उदित होते हैं । यह रति बद्धजीवकी मनोवृत्तिमें आविर्भूत होकर—स्वयं चिद्व्यापार होनेके कारण स्वप्रकाश तत्त्व होने पर भी प्रकाश्य तत्त्वकी भाँति प्रतीत होती है और मनोवृत्तिके रूपमें लक्षित होती है । जगतमें रति दो प्रकारसे उदित होती है—(१) कृष्ण या कृष्णभक्तोंकी कृपासे और (२) साधन अभिनिवेशसे । जगत्में साधनाभिनिवेशज रति ही सर्वत्र लक्षित होती है । कृपा अथवा प्रसादज रतिका उदय विरले ही देखा जाता है । साधनाभिनिवेशज रति भी दो प्रकारकी होती है—

(१) वैध-साधनसे उत्पन्न—वैधसाधनज-रति और  
(२) रागानुग साधनसे उत्पन्न रागानुगसाधनज रति ।

रति अत्यन्त दुर्लभ पदार्थ है । भोगकी कामना करनेवाले बुभुक्षु और मुक्तिकी अभिलाषा करनेवाले मुमुक्षु आदि साधकोंमें रतिके उदय होनेके जो सब लक्षण देखे जाते हैं, वह सब कुछ रति नहीं, बल्कि रतिका आभासमात्र होता है । उस रत्याभासको भी दो भागोंमें विभक्त किया जा सकता है—(१) प्रतिबिम्ब-रत्याभास और (२) छाया-रत्याभास । उन सब लक्षणोंको देख कर अतत्त्वज्ञ व्यक्ति उन-उन रत्याभासोंको ही शुद्ध-रति मान लेते हैं ।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि किसी व्यक्ति-

को साधन करते नहीं देखा जाता; फिर भी उसमें शुद्धरतिको उदित होते देखा जाता है । ऐसी दशामें ऐसा समझना चाहिए कि उस व्यक्तिका पूर्वकृत सुसाधन किसी कारणसे स्थगित था; उस कारणरूप विघ्नकं दूर होते ही वही स्थगित सुसाधन फलके साथ व्यक्त हो पड़ा है ।

जिस पुरुषके हृदयमें रति उदित हो गयी है, ऐसे व्यक्तिके आचार-व्यवहारमें कुछ दोषसा दीख पड़े, तो भी वे कृतार्थ हैं; उनके प्रति दोषारोप नहीं करना चाहिए अथवा उनका अनादर नहीं करना चाहिए । वास्तवमें जतरति व्यक्तियोंका चरित्र सम्पूर्ण निर्मल होता है । कभी-कभी दूसरे निम्न अधिकारी व्यक्तियोंकी दृष्टिमें उनकी कोई-कोई साधारण क्रिया साधारण वैधाचारके विरुद्धसी दीख पड़ती है; परन्तु वास्तवमें उनके अधिकारमें वह कदापि दूषणीय नहीं होती ।

विभाव, अनुभाव, सात्त्विक और व्यभिचारी (संचारी)—इन सामग्रियोंके मिलनसे रतिरूप प्रेम रस हो पड़ता है । रसके विषयमें पहले पाँचवें परिच्छेदमें “श्रीकृष्ण ही अखिल रसामृत-समुद्र हैं”—प्रसङ्गमें बतलाया जा चुका है । उसका पुनः यहाँ पर उल्लेख करना व्यर्थ है । पाठक समझ लेंगे ।

प्रेम दो प्रकारका होता है—केवल प्रेम और महिम-ज्ञान-सम्पन्न प्रेम । रागानुग भक्तिके साधनसे ‘केवल-प्रेम’का उदय होता है । विधिमार्गीय साधक भक्त प्रायः महिमज्ञानयुक्त प्रेमको लाभ कर साष्ट्यादि अवरथाओंको प्राप्त होते हैं ।

श्रीचैतन्य महाप्रभुकी शिष्याके अनुसार केवल-

प्रेम ही सर्वोत्तम फल है। प्रेम भी भावोत्थ ( भावसे उत्पन्न ) और प्रसादोत्थ ( कृपासे उत्पन्न ) के भेदसे दो प्रकारका होता है। अन्तरङ्ग भक्त्यङ्गोंकी निरन्तर सेवाद्वारा परम उत्कर्षताको प्राप्त हुए भावको भावोत्थ-प्रेम कहते हैं। भावोत्थ-प्रेम भी दो प्रकारका होता है—वैध-भावोत्थ और रागानुगीय भावोत्थ। भगवान या भगवद्भक्तोंके प्रसाद ( कृपा ) से उत्पन्न हुए प्रेमको प्रसादोत्थ-प्रेम कहते हैं। भावोत्थ-प्रेम बिरला ही होता है। भावोत्थ-प्रेम ही साधारणतः उत्पन्न होता है। श्रीचैतन्य चरितामृतमें भावोत्थ प्रेमके उदयका क्रम इस प्रकार बतलाया गया है—

कौन भाग्ये, कौन जीवैर 'श्रद्धा' यदि ह्य ।  
तवे सेइ जीव साधुसंग करय ॥  
साधुसंग हृदते ह्य श्रवण-कीर्तन ।  
साधन भक्त्ये ह्य सर्वानर्थ-निवर्तन ॥  
अनर्थ निवृत्ति हइले भक्ति 'निष्ठा' ह्य ।  
निष्ठा हइते श्रवणाद्ये 'रुचि' उपजय ॥  
रुचि भक्ति हैते ह्य 'आसक्ति' प्रचुर ।  
आसक्ति हैते चित्तेंजन्मे कृष्णे प्रीत्यंकुर ॥  
सेई 'रति' गाढ़ हैले घरे 'प्रेम' नाम ।  
सेई प्रेमा—'प्रयोजन' सर्वानन्द धाम ॥

याँर चित्ते कृष्ण-प्रेमा करये उदय ।  
ताँर वाक्य, क्रिया, मुद्रा विजेह ना बुभय ॥

( चं. च. म. २३।१०-१५ )

[ बड़े भाग्यसे किसी जीवके हृदयमें श्रद्धाका उदय होता है। श्रद्धा होने पर ही वह जीव साधुसङ्ग करता है। साधुसङ्गसे क्रमशः श्रीगुरु-पदाश्रय करके श्रवण-कीर्तन आदि साधनभक्तिके अङ्गोंका आचरण करता है। साधन-भक्तिके आचरणसे सब प्रकारके अनर्थ—सांसारिक आसक्तियाँ और देहात्मबुद्धि आदि दूर हो जाती हैं। अनर्थोंके दूर होने पर उसकी साधन-भक्ति निष्ठाका रूप धारण कर लेती है। निष्ठासे क्रमशः रुचि, रुचिसे आसक्ति और आसक्तिसे जीवके चित्तमें कृष्णके प्रति प्रीति-अंकुर—भाव या रतिका उदय होता है। यही रति अतिशय प्रगाढ़ होने पर 'प्रेम' कहलाती है। यह प्रेम ही जीवमात्रका चरम प्रयोजन है तथा सर्वानन्द-धाम है। जिस महा-सौभाग्यवानके चित्तमें कृष्ण-प्रेमका उदय हो जाता है, उसकी बातें, उसकी क्रियाएँ तथा उसके हाव-भावको बड़े-बड़े विद्वान और बुद्धिमान् व्यक्ति भी समझ नहीं पाते । ]

(क्रमशः)

## प्रचार-प्रसंग

(क) श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ मथुरामें श्रीश्रीअन्नकूट-महोत्सव

श्रीगौड़ीय - वेदान्त समितिके संस्थापक एवं नियामक परिव्राजकाचार्यवर्य १०८ श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके कृपा-निर्देश तथा त्रिदण्डीस्वामी भक्तिकुशल नारसिंह महाराजकी देखरेखमें इस वर्ष श्रीश्री अन्नकूट महोत्सवके उपलक्ष्यमें श्रीगौड़ीय-वेदान्त-समितिके शाखामठ—श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें गत ३० कार्तिक, १७ नवम्बर रविवारको श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-गान्धर्विका-गिरिधारीजीका पूजन एवं अन्नकूट-महोत्सव विराट समारोहके साथ सम्पन्न हुआ है।

उस दिन पूर्व सूचनाके अनुसार प्रातः ४ बजेसे ७ बजे तक मंगलारति एवं संकीर्तन, ८ से १० बजे तक श्रीचैतन्यचरितामृतसे अन्नकूट - प्रसंगका पाठ, पूर्वाह्न १० बजेसे दोपहरके १२ बजे तक श्रीगोवर्द्धन-पूजन और विशाल अन्नकूटका भोगराग सम्पन्न हुआ। लगभग २५० प्रकारकी भोग-सामग्रियाँ-गिरिधारीजीके भोगमें निवेदित थीं। श्रीश्रीराधा-विनोद-विहारीजीका अपूर्व दर्शन प्राप्त कर सभीके मुखसे 'धन्य' 'धन्य'—शब्द बर-बस निकल पड़ता था। लोग निनिमेष-दृष्टिसे—एक टक देखते ही रह जाते थे।

इस उत्सवके उपलक्ष्यमें शामके ४ बजेसे ७ बजे तक एक विराट धर्म-सभाका आयोजन किया गया था। इस धर्म-सभाके सभापति थे—वृन्दावनके

'इन्स्टीट्यूट ऑफ ऑरियेण्टल फिलासफी' के अध्यक्ष—पूज्यपाद त्रिदण्डी स्वामी श्रीश्रीमद्भक्ति हृदय वन महाराज—जिन्होंने "श्रीश्रीगौड़ीय मठ" के प्रतिष्ठाता तथा आधुनिक जगतमें श्रीचैतन्यदेवके विशुद्ध प्रेमधर्मके प्रचारक—जगद्गुरु श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामीके आनुगत्यमें पारचात्य देशोंमें श्रीचैतन्यमहाप्रभुके प्रेम-धर्मका विपुल प्रचार किया है। उक्त धर्म-सभामें श्रीभागवत-पत्रिकाके सम्पादक, त्रिदण्डीस्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराजने ओजस्विनी भाषामें सर्वप्रथम पूज्यपाद सभापति महोदयका परिचय प्रदान कर श्रीश्रीअन्नकूट का महत्त्व, अन्यान्य देवताओं एवं भगवदवतारोंसे स्वयंरूप ब्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दर कृष्णका श्रेष्ठत्व एवं वैशिष्ट्य तथा शुद्धाभक्तिका स्वरूप—इन विषयोंका संक्षेपमें किन्तु पाण्डित्यपूर्ण विवेचन प्रस्तुत किया। तदनन्तर स्थानीय एम. ई. एस. के एस. डी. ओ—श्रीपीताम्बरपंत, वृन्दावनके वैष्णव परिद्वत—श्रीकृष्णदास बाबाजी—व्याकरण एवं वैष्णव-दर्शन-तीर्थ और श्रीगिरिन्द्र गोवर्द्धनदास ब्रह्मचारीजीने भाषण दिये। पं० कृष्णदास बाबाजीने श्रीचैतन्य महाप्रभुके प्रेम-धर्मके सिद्धान्तपक्षरूप पृष्ठभूमिका दिग्दर्शन कराते हुए भगवद्भक्तिके आचरण पर बल दिया तथा श्रीब्रह्मचारीजीने विविध पुराणों और शास्त्रोंसे श्रीगिरिराज गोवर्द्धनका तत्त्व, उनकी पूजा और श्रीअन्नकूट-महोत्सव-सम्बन्धी विविध उपाख्यानों

का वर्णन कर कृष्ण-भक्तिका श्रेष्ठत्व स्थापन किया । अन्तमें पूजनीय सभापति महोदयने अपने स्वभाव-सुलभ सरल-सहज परन्तु ओजस्वीनी भाषामें श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रचारित शुद्धभक्ति-वाणीका, जिसका वेद-वेदान्त, उपनिषद्-पुगाण एवं पंचरात्रोंमें प्रतिपादन किया गया है—सुसिद्धान्तपूर्ण विवेचन प्रस्तुत किया । उन्होंने इस प्रसंगमें शुद्धभक्तिका स्वरूप और प्रकार भेद, भक्त्याभास और शुद्धभक्ति में प्रभेद; श्रद्धा, निष्कारुचि, आसक्ति, भाव और प्रेमरूप भक्तिके क्रम-विकाश आदि गंभीर विषयोंका बोधगम्य भाषामें प्राञ्जलरूपसे वर्णन किया । इस महोत्सव एवं सभामें वृन्दावनके सारस्वत-गौड़ीय-वैष्णवगण, स्थानीय उच्च शिक्षित एवं संध्रान्त पुरुष एवं महिलाएँ तथा साधारण जनता बड़ी संख्यामें उपस्थित थी । भाषणके अन्तमें उपस्थित समस्त लोगोंको श्रीश्रीअन्नकूटका महाप्रसाद वितरण किया गया । लगभग १०० लोगोंने प्रसाद-सेवन किया ।

स्थानीय एम. इ. एस. के एस. डी. ओ.—१० पीताम्बर पंतजी तथा चम्पा अप्रवाल कालेजके हिन्दी के सिनीयर अध्यापक एवं श्रीभागवत-पत्रिकाके सहकारी सम्पादक—श्रीकेदारदत्त तन्नाड़ीजी महोत्सव एवं सभा आदि विविध कार्योंकी सुव्यवस्था आदि कार्योंमें विशेष रूपसे सहायता करनेके कारण धन्यवादके पात्र है । श्रीहरिदास ब्रजवासी, श्रीकृष्ण-स्वामीदास ब्रह्मचारी, श्रीरंगनाथ ब्रह्मचारी, श्रीशेष-शायी ब्रह्मचारी, श्रीपुलिनविहारी और श्रीशैलेनदास ब्रह्मचारी आदि मठ-वासियोंकी सेवा-प्रचेष्टा बड़ी ही सराहनीय रही ।

### (ख) दूसरे मठोंमें

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठके अतिरिक्त समितिके दूसरे मठोंमें भी अन्नकूट-महोत्सव बड़े समारोहसे मनाया गया है । श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, श्रीधाम नवद्वीपमें स्वयं परमाराध्यतम श्रीश्रीआचार्य देवकी अध्यक्षतामें यह महोत्सव विराट संकीर्तन एवं भाषण आदिके माध्यमसे सुसम्पन्न हुआ है । श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुचुड़ामें परमाराध्यतम श्रीलगुरुदेवके कृपानिर्देशसे श्रीभगवानदास ब्रह्मचारी आदि मठ-सेवकोंने भी यह उत्सव बड़े धूम-धामसे सम्पन्न किया है ।

### श्रीश्रीगौर किशोरदास बाबाजी महाराजका तिरोभाव-महोत्सव

गत १० अप्रहायण, २७ नवम्बर, बुधवारको समितिके सभी मठोंमें श्रीश्रीगौरकिशोरदास बाबाजी महाराजकी तिरोभाव-तिथि मनायी गयी है । उक्त दिवस सर्वत्र ही बाबाजी महाराजके अतिमर्त्य त्याग वैराग्यपूर्ण जीवन-चरित्र तथा उनकी भजन-प्रणाली एवं शिक्षाओं पर प्रकाश डाला गया तथा उपस्थित सबको महाप्रसाद वितरण किया गया है ।

### चातुर्मास्य और दामोदर-व्रतकी समाप्ति

गत १४ अप्रहायण, १ दिसम्बर, रविवार, पूर्णिमाको समितिके सभी मठों एवं प्रचार—केन्द्रोंमें चातुर्मास्य-व्रत और नियम-सेवा ( कार्तिक-व्रत या दामोदर-व्रत ) की समाप्ति पर विधिपूर्वक संकीर्तन, भागवत-पाठ, के पश्चात् मुण्डन आदि कार्य हुए ।

तत्पश्चात् श्रीश्रीगुरुगौराङ्गराधाविनोद-विहारीके विशेष प्रकारसे भोगरागके पश्चात् सबको महाप्रसाद वितरण किया गया ।

### भारत-परिक्रमा पार्टीका प्रत्यावर्तन

परमाराध्यतम श्रीश्रील आचार्यदेवके कृपा-निर्देशसे त्रिदण्डीस्वामी भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजकी संचालकतामें भारतके प्रधान-प्रधान लगभग समस्त तीर्थोंके तीन धाम ( श्रीबद्री-केदार धामको छोड़कर ) और सप्त पुरियोंके सहित लगभग ६४ तीर्थ स्थानोंका दर्शन कर गत २ दिसम्बरको श्रीदेवानन्द गौड़ीयमठ, नवद्वीपमें लौट आये हैं । इस परिक्रमा पार्टीमें श्रीगजेन्द्रमोचन ब्रह्मचारी तथा श्रीमुरली मोहन ब्रह्मचारी आदिकी सेवा-प्रवेष्टा सराहनीय रही है ।

दूसरी पार्टी भी त्रिदण्डी स्वामी भक्तिवेदान्त हरिजन महाराज तथा त्रिदण्डी स्वामी भक्तिवेदान्त विष्णु दैवत महाराजकी संचालकतामें ( श्रीलआचार्य देवके कृपा-निर्देशसे ) गया - प्रयाग, आगरा, मथुरा

तथा वृजमण्डलके सभी तीर्थ-स्थान, हस्तिनापुर, कुरुक्षेत्र, हरिद्वार, ऋषिकेश, लक्ष्मण-भूला, नैमिषारण्य, अयोध्या, काशी एवं वैद्यनाथ आदि तीर्थोंका दर्शन एवं परिक्रमा करके २१ नवम्बरको लौट आयी है । इस पार्टीमें भी श्रीहरि-साधन ब्रह्मचारी आदि की सेवा-प्रवेष्टा प्रशंसनीय रही है ।

### शुद्ध-भक्तिका प्रचार

समितिके अन्यतम प्रचारक श्रीपाद निमाई चरण ब्रह्मचारी, व्याकरण तीर्थ चौबीस परगना ( परिचम-बंगाल ) के विभिन्न स्थानोंमें शुद्ध-भक्तिका प्रचार कर रहे हैं । उनके साथ श्रीगोविन्द दास ब्रह्मचारी तथा श्रीहरिबन्धु ब्रह्मचारीजी भी हैं ।

आसामके विभिन्न - स्थानोंमें श्रीगौड़ीय-वेदान्त समितिके प्रचारक-श्रीरसिकमोहन दासाधिकारी भी श्रीमाधवदास ब्रह्मचारी और श्रीकानाईदास ब्रह्मचारीके साथ श्रीचैतन्य-वाणीका प्रचार कर रहे हैं ।

— प्रकाशक

## राधा कृष्ण नाम नित लीजे

राधा कृष्ण नाम नित लीजे ।

जग प्रपञ्च छल छन्द त्यागि मन, रसना ते धिर हरि रस पीजे ।  
दोष भरित इन नयन युगल कहु, श्याम रूप रङ्ग के रस भीजे ॥  
काम-क्रोध-मद-मोह चम् धुनि, भ्रति पथमें आवन नहिं दीजे ।  
प्रज रज भाल चढ़ा चन्दन सम मालि, २ हृदय करठ मँड कीजे ॥  
ब्रज मण्डल रुचि वीथिन चलि, बलि चरन पूत करि जीजे ।  
कृष्णचन्द्र बसि भक्तन पद तल, देह सफल करि लीजे ॥

— बागरोवी श्रीकृष्णचन्द्र शास्त्री, साहित्यरत्न, काव्यतीर्थ